

अनुसंधान के मूलतत्त्व



क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय
आगरा

अनुसंधान के मूलतत्त्व

[अनुसंधान-विदग्ध-गोष्ठी के भाषण]

सम्पादक

डॉ० दिश्वनाथ प्रसाद

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय
आगरा

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ सं०
१ प्राक्कथन डॉ० विश्वनाथ प्रसाद सचालक क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।	५
२ उपक्रमणिका	७
३ अनुसंधान के सिद्धान्त डॉ० विश्वनाथ प्रसाद, सचालक क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।	६
४ अनुसंधान के सामान्य तत्त्व डॉ० सत्येन्द्र, प्राध्यापक, क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।	१६
५ अनुसंधान की तैयारी डॉ० रामकृष्ण गणेश हर्षे प्राध्यापक, क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।	२६
६ पुस्तकालय का उपयोग श्री प्रभात कुमार बनर्जी रीडर, लाइब्रेरी साइंस, विक्रम यूनिवर्सिटी, उज्जैन ।	४३
७ हस्तलिखित ग्रंथ और उनका उपयोग श्री उदय शङ्कर शास्त्री, क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।	५७
८ शिलालेख और उनका वाचन श्री उदय शङ्कर शास्त्री, क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।	६७
९ हस्तलिखित ग्रंथों का उपयोग (२) डॉ० सत्येन्द्र प्राध्यापक, क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।	७३
१० पुस्तकाध्ययन तथा सामग्री-निवर्धन श्री रमानाथ सहाय प्राध्यापक, क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा ।	८३

विषय	पृष्ठ सं०
११ देवीकृत विष्णु तथा रूपरेखा-विष्णु डॉ. सत्येन्द्र प्राध्यापक क. भू. हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ आगरा।	६३
१२ हिमालय का गद्य-साहित्य श्री राधेश्याम त्रिपाठी प्राध्यापक यदुसैमण्ट दिल्ली कासेब प्रेस पर।	११७
१३ बुद्धि पत्र	१२७

प्राक्कथन

मुझे यह पुस्तक प्रस्तुत करते बहुत प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि इसके द्वारा हम एक वास्तविक शभाव की पूर्ति करने का प्रयास कर रहे हैं ।

यह विद्यापीठ प्रमुखत एक शोध-संस्था है । इसमें शोध-सम्बन्धी कितनी ही सुविधाएँ उपलब्ध हैं । अनुसंधान के योग्य एक उपयोगी पुस्तकालय है । हस्तलिखित ग्रन्थों का आगार भी समर्थ हो चला है । लोक-साहित्य का संग्रहालय भी समृद्धि की ओर अग्रसर है । हस्तलेखों को पढ़ने के लिए रीडर, टेपरेकार्डर तथा ध्वनि-विज्ञान-प्रयोगशाला के यांत्रिक साधन भी प्रस्तुत हैं । उन सबके रहते हुए भी अनेक कठिनाइयों का सामना अनुसंधित्सुओं को करना पड़ता है । कुछ कठिनाइयाँ तो आरम्भ में ही खड़ी हो जाती हैं । अनुसंधान का कार्य नये अनुसंधित्सुओं के लिए कुछ अटपटा-सा होता है । उनके सामने अनेक प्रश्न खड़े हो जाते हैं । किस विषय का अनुसंधान करें, कैसे करें, क्या तैयारियाँ करें आदि । ये जिज्ञासाएँ लेकर वार-वार वे अपने निर्देशक के पास जाते हैं और उनके तरह तरह के समाधान उन्हें मिलते हैं । वास्तविक बात यह है कि आधुनिक युग में अनुसंधान की कला का अच्छा विकास हो चला है । उसके बिना जाने हमारे अनुसंधित्सुओं का बहुत समय व्यर्थ नष्ट होता है । वे अपने अनुसंधान को ठीक दिशा में नहीं बढ़ा पाते । अतः अपने काम को और भी जटिल तथा दूभर बना लेते हैं । वे आवश्यक साधनों से युक्त नहीं हो पाते, क्योंकि जानते ही नहीं कि किन साधनों की कहाँ आवश्यकता होगी । क्या लिखा जाय, कैसे लिखा जाय, यह भी नहीं जानते । अतः हमारे विद्यापीठ जैसी शोध-संस्था का कर्तव्य हो जाता है कि वह अनुसंधान की समस्त प्रणालियाँ अपने अनुसंधित्सुओं को भली प्रकार समझा दे ।

इस निमित्त हमने एक अनुसंधान-विदग्ध-गोष्ठी का आयोजन किया था, जो पिछले साल १९ से २६ अगस्त तक चली । इसका उद्घाटन हमारे विश्वविद्यालय के उप-कुलपति आदरणीय श्री कालकाप्रसादजी भटनागर ने किया था । इसमें अनुसंधित्सुओं की कठिनाइयों को सामने रखते हुए अनुसंधानोपयोगी विविध विषयों पर प्रकाश डाला गया ।

अनुसंधान एक प्रकार की साधना है । इसके लिए पूर्ण आत्म-समर्पण किये बिना कार्य-सिद्धि सम्भव नहीं है । इस तल्लीनता के साथ ही साथ अनुसंधान की विभिन्न प्रणालियों की भी जानकारी आवश्यक है । इसीलिए विदग्ध-गोष्ठी में हमने अनुसंधान की सभी आधुनिकतम पद्धतियों और उपकरणों की विस्तृत विवेचना का आयोजन किया था । हमारे विद्यापीठ के प्राध्यापकों तथा सभी सहयोगियों ने इस सम्बन्ध में अपने अनुभवों और अध्ययनों के आधार पर समुचित प्रकाश डाला, जिनके महत्त्व से प्रभावित होकर हमारे वहुतेरे अनुसंधित्सुओं तथा सहकर्मियों ने विशेष अनुरोध किया कि इन भाषणों को मुद्रित करा दिया जाय तो इनकी उपलब्धियों से सभी लाभ उठावेंगे ।

यह तो आरम्भ में ही निश्चय किया गया था कि इस पोष्ठी का समस्त विवरण "भारतीय साहित्य" में प्रकाशित कराया जाय किन्तु उपर्युक्त अनुरोध की प्रेरणा से यह प्रतीत हुआ कि इस पोष्ठी के भाषणों को पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशित करा जेना भी अधिक उपयोजी होना । इससे विद्यापीठ के वर्तमान छात्रों के अतिरिक्त अनुसंधान की परम्परा में आने वाले भावी अनुसंधित्सुओं को भी इससे लाभ होया । दिल्ली में इस विषय पर वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत की गई यह पहली ही पुस्तक है । दिल्ली विश्वविद्यालय ने अनुसंधान का स्वरूप नाम से जो एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित की है, उसमें अनुसंधान के सामान्य तत्त्वों पर सामान्यरूपेण विचार प्रस्तुत किये गये हैं । यह पुस्तक भी अपने स्थान पर उपयोजी है । किन्तु उसमें अनुसंधान-सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक स्थान नहीं दिया जा सका था ।

हमारा विश्वास है कि यह प्रकाशन इस अभाव की पूर्ति का साधन होना पीर इसके द्वारा विद्यापीठ के अनुसंधित्सु ही नहीं बरन् अनुसंधान-अनुशीलन में मने हुए सभी लोग लाभान्वित होंगे ।

क मुं दिल्ली तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ
 आयरा विश्वविद्यालय आयरा ।
 १ सितम्बर १९५६ ई

विद्वन्नाथ प्रसाद
 संचालक

उपक्रमणिका

अपनी स्नातकोत्तरीय परीक्षाएँ समाप्त कर लेने के पश्चात् प्रायः अनुसन्धित्सु विद्यार्थी पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालयों में प्रयत्नशील होते हैं। फलतः उन्हें अपनी रुचि अथवा अपने निर्देशक की रुचि के अनुसार निर्वाचित विषय के अनुसार कम से कम दो वर्षों का समय लगाकर शोध-प्रबन्ध पूर्ण करना पड़ता है। विषय-निर्वाचन में एक बात मुख्य रूप से यह भी ध्यान में रखी जाती है कि जो विषय अनुसन्धित्सु लेना चाहता है, उस पर किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा कार्य तो नहीं हो रहा है। अणुवादस्वरूप कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि सयोगवश एक ही विषय पर दो-दो विश्वविद्यालयों में कार्य कराया जा रहा है। परन्तु उनमें भी दृष्टिकोण का अन्तर तो सर्वथा सम्भव है। इस सम्बन्ध में अनुसन्धित्सु को विश्वविद्यालयों द्वारा प्रकाशित वे विवरणिकाएँ देखनी चाहिए, जिन्हें वे प्रति वर्ष इसी उद्देश्य से प्रकाशित करते हैं कि विषय-निर्वाचन में पुनरावृत्ति नहीं हो। कुछ दिन हुए “साप्ताहिक हिन्दुस्तान” (ता० ११-४-५८) में अनुसन्धान के लिए निर्धारित विषयों की एक सूची प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त “नागरी प्रचारिणी पत्रिका”, “भारतीय अनुशीलन” आदि पत्रिकाओं में भी समय-समय पर ऐसी सूचियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। मद्रास विश्वविद्यालय ने भी एक ऐसा बुलेटिन प्रकाशित किया है, जिसमें प्रायः बहुत से विश्वविद्यालयों के शोध-प्रबन्धों के शीर्षकों का निर्देश है। अनुसन्धित्सु को अपने विषय के निर्वाचन के लिए इन्हें अवश्य ही देखना चाहिए।

हिन्दी भाषा और साहित्य का कालानुसार विभाजन तथा उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों और धाराओं का विवेचन भी शोध का एक मुख्य अंग है। इस सम्बन्ध में इधर कई प्रामाणिक ग्रन्थें प्रकाशित हुए हैं, जैसे, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का “हिन्दी साहित्य का आदि काल” तथा “हिन्दी साहित्य की भूमिका”, डा० लक्ष्मी सागर वाष्ण्य की “आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका”, डा० धीरेन्द्र वर्मा का “ब्रजभाषा का इतिहास”, डा० वावूराम सक्सेना की “इवोल्यूशन ऑफ अरबी”, डा० श्रीकृष्णलाल का “आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास” डा० विश्वनाथ प्रसाद की “लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ मानभूम”, डा० उदय नारायण तिवारी का “भोजपुरी भाषा और साहित्य”, डा० शिव प्रसाद सिंह की “सूर पूर्व ब्रज भाषा” आदि।

इसके अतिरिक्त मध्ययुगीन साहित्य और रीति काल के कवियों एवं उनके ग्रन्थों पर अलग-अलग काम करने के लिए काशी नागरी प्रचारिणी द्वारा प्रकाशित “हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज रिपोर्टें” (१८ भाग), “राजस्थान में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज” (४ भाग) विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् द्वारा प्रकाशित “खोज-विवरण” (२ भाग), महावीर दिगम्बर जैन संस्थान, जयपुर द्वारा प्रकाशित “हस्तलिखित ग्रन्थ सूची” (३ भाग), “भारतीय साहित्य” आदि प्रकाशनों को देखना चाहिए। सूफी साहित्य तथा मुस्लिम सन्तो पर अनुसन्धान करने वालों को मोटे तौर पर भारत में सूफियों के सम्प्रदाय

घौर उनकी मान्यताएँ प्रादि जानने के लिए परसुराम भतुर्वेदी द्वारा लिखित 'सूफ़ी काव्य-संग्रह' का धरणा सुक्त कृत माधरी के परबर्ती सूफ़ी ज़िन्ना भावि ग्रंथों को देखना चाहिए। निम्न-परम्परा के सख्त घौर उनके द्वारा प्रकथित सम्प्रदायों के लिए का वे एन. फ़र्गुहर की पाठटभाइन प्राब इंडियन रेसिक्विस रेसिक्विस मूबमेन्ट्स प्राब इंडिया' ए के कृत कृत 'संग्रहाय परसुराम भतुर्वेदी की उत्तरी भारत की सख्त-परम्परा हेल्सिगस की 'एमसाक्सोपीडिया प्राब रेसिक्विस एण्ड एथिक्स' प्रादि पुस्तकें देखनी चाहिए। इनके प्रतिरिक्त घौर भी विभिन्न सम्प्रदायों पर ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं जो उत्तर विषयों की जानकारी के लिए उपयोगी होंगे।

पाठानुसंधान का कार्य करने वाले अनुसंधितसुधों को चाहिए कि वे अपने लिए ग्रंथ निर्वाचन करने से पहले पाठानुसंधान की नैतिक पद्धति वाले ग्रंथों को देखें जिनमें "सुखचंद्र-अभिमानग्रंथ" का कर्ता लिखित 'इन्ट्रोडक्शन टु इंडियन टैक्सुसुसल क्रिस्टियन' तथा हिस्टोरिकल लिब्रिस्टिकस प्रादि मूक्य हैं। पाठानुसंधान के लिए यह आवश्यक है कि एक भावार्थ प्रति होनी चाहिए जो नैतिक दृष्टि से प्रामाणिक हो तथा उसकी सहायता के लिए अधिक से अधिक प्रतिर्त रहनी चाहिए। इस विषय पर इधर का माताप्रसार का वासुदेव-वरण प्रथमान तथा का पारसनाथ तिवारी द्वारा कबीर तुमही और नामही पर विशेष प्रामाणिक रूप से काम हुआ है। उनके द्वारा सम्पादित संस्करणों को भी देखना चाहिए।

अपनी ज़िन्ना घौर विषय से संबंधित सामग्री देख कर घौर उस पर मनीमति विचार कर लेने के बाद ही प्रकथ्य की रूप-रेख तैयार करनी चाहिए। उसमें पहिले मूक्य विषय से संबंधित मोटे-मोटे विषय करने चाहिए, तदनन्तर उस प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए काटे-छोटे उप विषय करने चाहिए। इससे सामग्री-बचन करने घौर उसे क्रमानुसार व्यवस्थित करने में सुविधा होती है। सहायक के लिए कमी-कमी ऐसा भी हो सकता है कि सोच प्रकथ्य में प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करने के लिए जिया गया प्रमाण-स्वरूप उद्धरण ही इतना हो जाय कि वह स्वयं एक टिप्पणी बन जाय। यह प्रतिरेक से बचने के लिए घौर अपने कथन की पुष्टि के लिए उद्धृत प्रमाण को विस्तार में न प्रह्व कर उसका सूत्र तर्क ही पर्याप्त रहेगा।

जिन ग्रंथों से सामग्री का संकलन किया जाय उनका पूरा विवरण [ग्रंथ का नाम लेनक का नाम यदि प्रब मुद्रित है तो उसका पूरा परिचय-महा प्रकथन-संक्षु प्रकाशक एवं प्रेस का सम्बन्ध सफ़रक की ज़रूरी प्रादि] घौर यदि हस्तलिखित है तो उसके प्राप्ति स्थान उनकी जिया एवं रचनाकाल प्रादि का प्रकथन जस्सेब कर देना चाहिए। इसके प्रकथन परमौचित्य बहुत बड़ जाती है। धन्य हो यदि उद्धृत ग्रंथों की कार्य सूची साथ ही साथ तैयार होती रहे।

ग्रंथ के उद्धरण प्रादि इस प्रकार लिए जानें चाहिए कि उनमें अपने विषय को स्पष्ट करने की पूरी समता रहे किसी प्रकार की सोड-मरोड की मुबाइय न रहे। अनुसंधान-कार्य में मात्र ही इस प्रकार की वापसना बरतनी चाहिए।

अनुसंधान के सिद्धान्त

अनुसंधान की प्रवृत्ति वस्तुतः एक सहज प्रवृत्ति है। ज्ञान की उपासना जब से चली तब से उसके साथ ही अनुसंधान की प्रवृत्ति भी चली। ज्ञान एक प्रकार से अनुसंधान का पर्याय या प्रतिफल है। ये जो प्रकृति के विभिन्न रूप मनुष्य के सामने प्रकट हुए और उनकी प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में उसके मन में जो जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुईं, उन्हीं से अनुसंधान की प्रवृत्ति का सम्बन्ध है।

हिन्दी में तीन शब्द 'रिसर्च' के लिए प्रयुक्त होते हैं। एक तो अनुसंधान, दूसरा गवेषणा और एक तीसरा शब्द प्रयुक्त होता है शोध। अनुसंधान, गवेषणा और शोध ये तीनों शब्द मिलकर जो भाव व्यक्त करते हैं, मैं समझता हूँ, कि उससे अनुसंधान का स्वरूप कई दृष्टियों से हमारे सामने आ जाता है। संधान के पहले लगा हुआ अनुसंधान प्रायः पश्चात् के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार यदि किसी ने प्रारम्भ में कोई खोज की हो, किसी सत्य का अनुभव किया हो और उसे प्रकाश में भी लाया हो, परन्तु वह सत्य जटिलता या पुरातनता के कारण तिरोहित हो गया हो और फिर उस सत्य के उद्घाटन या विवेचन का प्रयत्न अन्य कोई पीछे से करे तो हम इस प्रयास को अनुसंधान कह सकते हैं।

दूसरा शब्द गवेषणा एक रूपकात्मक शब्द है। जगलो में गौओं के गले में बंधी हुई घटियों की ध्वनि सुनकर उनकी जो खोज की जाती है, शब्दगत अर्थ में वही गवेषणा है। किन्तु अर्थविस्तार के नियम से अब इसका प्रयोग सामान्य रूप से अन्य विषयों की खोज के लिए भी होने लगा है। जैसे किसी गूढ विषय के किसी पक्ष का कहीं से कुछ अन्दाज हमें मिल रहा हो और हम उसकी खोज में प्रवृत्त हों। किसी विषय का कुछ सकेत पाकर उसके अन्तर्निहित मूल स्रोतों तक पहुँचने के लिए प्रयत्नशील होना अनुसंधान की एक विशेष प्रवृत्ति है। तीसरा शब्द शोध शुद्ध धातु से व्युत्पन्न है। इस अर्थ में उसका सम्बन्ध वास्तविकता के निर्णय से जोड़ा जा सकता है। किसी विषय में क्या सच है, क्या सच नहीं है, इसका विश्लेषण करके एक परिणाम पर पहुँचने के लिए हम जो प्रयत्न करते हैं वह शोध ही है।

इन तीनों प्रयोगों को एक साथ ग्रहण करके विचार करें तो धनुसंबान या रिसर्च के स्वरूप को हम बहुत कुछ अंशों में ग्रहण कर सकेंगे। धनुसंबान पहले के किसी उपबन्ध किन्तु क्षुब्धप्राय सत्य को फिर प्राप्त करने की चेष्टा करता है यथेष्टता किसी सुदूर गुहानिहित सत्य की ध्वनि को खोजने का प्रयत्न करके सचमुचे किसी विषय के मूल स्रोतों तक पहुँचने का प्रयास करती है और खोज सत्यासत्य का विविध निरीक्षण-परीक्षण करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का व्यापार है।

क्षुब्ध सत्य को पकड़ने की चेष्टा के सम्बन्ध में तुमसीदास जी के कथन 'क्षुब्ध भए सद्ब्रह्म' की ओर ध्यान जाता है तो एक सहज विज्ञासा होती है कि ये सद्ब्रह्म कौन से थे। यदि कोई व्यक्ति इसी विज्ञासा की वृत्ति के लिए प्रयास करे तो निश्चय ही उसके कार्य को धनुसंबान माना जा सकता है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या ऐसा प्रयास भी धनुसंबान कहा जा सकता है जिसमें ऐसी खोज खोजने का प्रयत्न करें जो पहले कभी खोजी न गई हो, और प्रकाश में न आ सकी हो? वस्तुतः यह भी धनुसंबान का विषय है। और इसे उसका एक भोजा लक्षण कहा जा सकता है। यंत्रेण के रिसर्च सम्बन्ध में जो पूर्वप्रश्न या उपसर्ग रि' है वह प्रायः निश्चय या सम्पूर्णता का ही चोत्सुक है। किसी तत्त्व का अधिक से अधिक सूक्ष्मता के साथ अन्वेषण करने को रिसर्च या 'रिसर्कवरी' कहते हैं। इस प्रकार धनुसंबान के अन्तर्गत किसी ऐसे सत्य के सम्बन्ध उद्घाटन का प्रयत्न भी समाविष्ट है जिसकी ओर पहले किसी का ध्यान नहीं गया हो।

पहले जब लिखित अंशों के रूप में ज्ञान बहुत अधिक सुलभ नहीं था तब अपने यहाँ और पाश्चात्य जगत् में भी प्रायः शास्त्रार्थ या वाद-व्यतिवाद के रूप से ही धनुसंबान का काम किया जाता था। विद्याविदों को मौखिक तर्कों के द्वारा विद्वानों के सामने अपने तत्त्व का प्रतिपादन करना पड़ता था। यूरोप में करीब १९वीं २०वीं २१वीं शताब्दी तक कुछ अंशों में यह परम्परा चलती रही। अपने यहाँ यह शास्त्रार्थों का रूप १९वीं शताब्दी तथा २०वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक चला रहा है। पश्चिमों के जो या तीन पक्ष भाषण में विवाद करके किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न करते थे। परन्तु उसमें यह देखा गया कि ज्ञान बहुत सीमित हो जाता था। तर्कों और तर्क-पद्धतियों में पुरानी सीक ही पीटी जाती थी। परिणाम की दृष्टि से भी इनका प्रयोग अत्यन्त सीमित और संकुचित था क्योंकि इस प्रकार के सभी वाद-विवाद अन्त में केवल वाक्यों की सृष्टता और प्रसृष्टता पर आकर समाप्त हो जाते थे। दोनों पक्षों की ओर से शास्त्रार्थ का अन्त 'अबुद्ध कि वक्तव्यम्' इसी परम्पराअन्त कोनाहल में होता था।

यूरोप से जब लोगों ने देखा कि इस परिपाटी से काम नहीं चलता है और जब विद्वानों के साम-साध सुदृढ-कसा और वैज्ञानिक दृष्टि का विकास हुआ तब वह प्रायःसक सम्बन्ध गया कि धनुसंबान लिखित प्रबंध के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इसी को 'पीसिस' कहा गया। जब विद्वानविद्वानों में धनुसंबान का कार्य प्रारंभ हुआ तो पीसिस या खोज प्रबंध का महत्त्व और भी बढ़ गया। उसमें लिखित रूप में अपने पक्ष का स्पष्टीकरण और समर्थन करना पड़ता था। इस प्रकार वाद-विवाद के

क्रम ने लिखित शोध-प्रबन्ध का रूप ग्रहण किया। फिर तो यह विचार भी करना पड़ा कि शोध-प्रबन्ध का लिखित रूप कैसा हो, स्वाभ्याय या विचारविनिमय द्वारा अर्जित ज्ञान का विवरण या रिपोर्ट किस रूप में प्रस्तुत की जाय। इस प्रकार का विवाद करते-करते शोध-प्रबन्ध लिखने की कला का भी विकास हुआ। इस तरह अनुसंधान और शोध-प्रबन्ध या थोसिस इन दोनों में घनिष्ठ संबंध जुड़ा।

शास्त्रार्थों और वाद-विवादों की उल्लिखित गतानुगतिकता की प्रतिक्रिया के रूप में शोध-प्रबन्धों की परम्परा ने एक सिद्धान्त यह स्थापित किया कि अनुसंधान का विषय नया हो और उसका प्रतिपादन पहले से ही किसी अन्य के द्वारा नहीं किया जा चुका हो। किसी पूर्व सिद्ध बात को ही सामने रख कर पुराने तर्कों के ही द्वारा उसका प्रतिपादन और समर्थन इस सिद्धान्त के अनुसार निरर्थक माना गया। जो पहले ही सिद्ध किया जा चुका है उसको फिर बया सिद्ध करना। 'सिद्धसाधने कुत प्रयास' सिद्ध करने के लिए तो कोई नया तथ्य, कोई नई सामग्री चाहिए।

अतः अनुसंधित्सु के सामने पहली और सबसे बड़ी समस्या आती है नयी सामग्री की। विद्यार्थी कौन सी सामग्री ले कि वह स्वयं अपने भीतर यह अनुभव कर सके और दूसरे को भी यह बता सके कि वह किसी ऐसे सत्य के अन्वेषण में लगा है जो पहले से स्पष्ट नहीं है। अतएव अनुसंधान के सम्बन्ध में पहला प्रश्न हमारे सामने आता है किसी नयी समस्या का। जब समस्या हमारे सामने खड़ी हो जाय तब समझना चाहिए कि हम अनुसंधान के उस द्वार पर आ पहुँचे जिसके भीतर प्रवेश पाने का हमें प्रयत्न करना है। अनुसंधान के विषय-निर्वाचन का प्रश्न इसी से सम्बन्धित है।

समस्या की उपलब्धि हो जाने के बाद अनुसंधित्सु को उसकी सीमा निर्धारित करनी पड़ती है। विषय का क्षेत्र यदि उचित रूप से सीमित नहीं किया गया, उसका दायरा यदि बहुत विखरा हुआ और विस्तीर्ण छोड़ दिया गया तो कार्य कठिन हो जाता है और सफलता बहुत कुछ मन्दिग्ध हो जाती है। इसके विपरीत यदि सीमा का यथावत् निर्धारण कर लिया गया तो कार्य सुगम हो जाता है और अनुसंधायक अपनी समस्या को अधिक स्पष्टता के साथ देख सकता है। जैसे रोशनी का फोकस ठीक कर देने से उसका तेज बढ़ जाता है वैसे ही विषय को समुचित रूप से सीमित कर देने से उसके प्रभाव और प्रेषण बढ़ जाते हैं। उसमें एकाग्रता तथा किसी निश्चित विचार-बिन्दु की ओर केन्द्रीकरण के साधन और आधार सरलता से मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ कालिदास के काव्य पर काम करने की अपेक्षा कालिदास के प्रबन्ध काव्य अथवा कालिदास की उपमाएँ अथवा कालिदास का प्रकृति-चित्रण—विषय के ऐसे पक्षों पर अधिक सुगमता से काम किया जा सकता है। हिन्दी गद्य की अपेक्षा हिन्दी का भारतेन्दुकालीन गद्य या द्विवेदीकालीन गद्य पर अधिक गहराई के साथ विचार किया जा सकता है। वस्तुतः किसी विषय के बहुतेरे पक्षों के लेने के बजाय केवल कुछ पक्षों को लेना अधिक वाछनीय होता है, क्योंकि वे अधिक आसानी से मँभाल में आ सकते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि अनुसंधान का आदर्श है निर्वाचित विषय का अधिक से अधिक

सुनाई देते हैं, कुछ नहीं और कुछ स्वर अन्य स्वरों की अपेक्षा उलभे में जाते हैं । टेलिफोन के ऐसे ध्वनिगत विकारों के कारणों पर भी डा० फ्राइ ने विचार किया है । सिनेमा अथवा व्याख्यान-कक्ष सदृश भवनों के निर्माण में डा० फ्राइ के अनुसंधान से लाभ उठाया जाय या टेलिफोन के सुधार में उनके निष्कर्ष उपयोगी सिद्ध हों तो उनका अनुसंधान निस्सन्देह प्रयोगात्मक तथा व्यावहारिक अनुसंधान के अन्तर्गत आ जायगा । अन्यथा उसे केवल जिज्ञासा की शान्ति के ज्ञान के साधन के रूप में विशुद्ध अनुसंधान के अन्तर्गत रखा जायगा ।

इस प्रकार उपयुक्त वर्गीकरण केवल उद्देश्यों की भिन्नता पर प्रकाश डालता है, अनुसंधान के विविध प्रकारों को प्रकट नहीं करता ।

कुछ विद्वानों ने अनुसंधान के ये भेद बताये हैं —

१—वर्णनात्मक अनुसंधान २—ऐतिहासिक अनुसंधान ३—पूरक अनुसंधान
४—दार्शनिक अनुसंधान ५—व्यावहारिक अनुसंधान ६—मनोवैज्ञानिक अनुसंधान
७—रचनात्मक अनुसंधान और ८—शैक्षणिक जिसको उन्होंने दूसरे शब्दों में पाठ्य-क्रम अनुसंधान बतलाया है ।

यह वर्गीकरण भी एक दृष्टि से भ्रामक ही प्रतीत होता है, क्योंकि मूलभूत रूप में इतने भेद हो, ऐसी सभावना नहीं । ऐसे तो हम गिनाना चाहें तो दस-पाँच भेद और भी बढ़ा दे सकते हैं । मेरी राय में अनुसंधान के स्वरूप को समझने के लिए उसके तीन स्पष्ट और मूलभूत वर्ग कर लेना सुविधाजनक है । पहले भेद को हम शास्त्रीय कह सकते हैं । इसमें किसी विषय का विवेचन शास्त्रीय ढंग से किया जाता है । 'यहाँ 'शास्त्रीय' शब्द का अर्थ केवल भारतीय शास्त्रों तक सीमित न समझा जाय । जो निश्चित सिद्धान्त, मान्यताएँ, मानदंड तथा मूल्यांकन के आधार हमें परम्परा से मिले हैं, चाहे वह परम्परा पूर्वीय ही या पाश्चात्य, उनको सामने रख कर किसी विषय का विवेचन करना शास्त्रीय अनुसंधान है । इसे मान्यता-परक अनुसंधान भी कहा जा सकता है । दूसरे प्रकार के अनुसंधान वर्णनात्मक तथा प्रयोगात्मक अनुसंधान हैं । ये अवलोकण अथवा प्रयोगों पर आधारित रहते हैं और इनकी सामग्रियों को क्षेत्रीय निरीक्षण-परीक्षण के द्वारा अथवा प्रयोगशालाओं में विधिवत् जाँच लेने के बाद ही हम एक निश्चित रूप देते हैं । तीसरी कोटि में वे अनुसंधान आते हैं जिनको ऐतिहासिक अनुसंधान कहा जा सकता है । इनमें किसी विषय को लेकर उसके विकास-क्रम की खोज की जाती है और उसकी विकास परम्परा की जो कड़ियाँ अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी हैं उनको फिर जोड़ने की चेष्टा की जाती है ।

अनुसंधान का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है—अनुसंधान की पात्रता । अनुसंधान की पात्रता के दो स्तर होते हैं । एक तो वह स्तर है जिसमें हम इस बात की जाँच करते हैं कि किसी विद्यार्थी में अनुसंधान की योग्यता है अथवा नहीं, और प्रारम्भ में हम उसमें योग्यता जमाने की ही कोशिश करते हैं । एम० ए० के स्तर पर हमारा यही प्रयत्न रहता है कि विद्यार्थी में अनुसंधान की योग्यता का विकास हो सके । एम० ए०

से कुछ ऊँचा स्तर है एम लिट का। परन्तु उसमें भी उर्ध्वय यही खूटा है। एम ए धनवा एम लिट म का सोम प्रबन्ध रखे जाते हैं वह इसी दृष्टि से रखे जाते हैं कि विद्यार्थियों को धनसंभान की योग्यता प्राप्त हो सके। उसमें जो बीज की जाती है वह इसी दृष्टि से की जाती है कि विद्यार्थी में धनसंभान की योग्यता का विकास हुआ धनवा नहीं। और वह योग्यता किस बात में है? यह योग्यता वस्तुतः इस बात में बची जाती है कि वे किसी वास्तविक समस्या को अपने सामने रख सकते हैं धनवा नहीं उसे यथावत् रूप में देख सकते हैं वा नहीं और उस समस्या के लिए सामग्री का सफल कर सकते हैं धनवा नहीं।

धनसंभान की पात्रता के इस पहले स्तर में सफलता पाने के बाद उसके दूसरे स्तर की स्थिति आती है। यहाँ हम धनसंभालसु के भीतर वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण की योग्यता उत्पन्न करते हैं। विश्लेषण की वैज्ञानिकता धनसंभान की धनव्यक्त वर्त है। यह वैज्ञानिकता क्या है इसके बारे में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न मत दिए हैं। यहाँ में इस वैज्ञानिकता की कुछ आधारभूत बातों की ओर ध्यानपूर्वक ध्यान दायित्व करना।

विचार की सामान्य प्रणाली और वैज्ञानिक प्रणाली में पहला भेद इस बात का है कि वैज्ञानिक प्रणाली में हम ज्ञान को व्यवस्थित करके देखते हैं। विचार हुआ व्यवस्थित ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक ज्ञान में एक व्यवस्था एक सुनिश्चिता होनी चाहिए। और इसीलिए उसमें निमग्न और वर्गीकरण का महत्त्व हो जाता है। दूसरी आवश्यक बात यह है कि वैज्ञानिक ज्ञान पर्यवेक्षण और प्रयोग के आधार पर बढ़ा हो। तीसरी बात यह है कि वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते समय हमें सत्य का व्यक्तिनिष्ठ स्वरूप नहीं ग्रहण करना चाहिए। व्यक्ति-निरपेक्ष और वस्तुनिष्ठ ज्ञान को ही विज्ञान कहा जाता है। साहित्य के विद्यार्थी प्रायः व्यक्ति-सापेक्ष ज्ञान में ही ध्यान करते हैं। हमारे माथ हमारे भीतर की धनसंभाली और धन-सुख की प्रवृत्तियाँ इन वैयक्तिक सत्य का रस देती हैं। विज्ञान के क्षेत्र में यह संभव नहीं है। किसी विषय पर, धनवा जीवन के किसी पक्ष पर व्यक्ति-सापेक्ष दृष्टि पर अपनी संवेदनशीलता के सहित जब हम अपनी दृष्टि डालते हैं तो उसके कई रूप हमारे सामने सजे हो जाते हैं। जिसकी दृष्टियाँ होती हैं उठने ही रंग रूप हमारे सम्मुख धन जाते हैं। हमारी सम्पूर्ण पर्यवेक्षण और समझ बढ़ती है। और बितने व्यक्ति होते हैं समय के उठने ही स्वरूप विषय-वस्तुओं के विविध रूप-रूपों में सामने धन जाते हैं। इसके विपरीत विज्ञान के क्षेत्र में बाह्य में विचार करने वाले धन विचार करें बाह्य और कोई विचार करने सब एक ही तरीके पर पहुँचेंगे। यदि एक धनसंभालक के लिए पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन इन दो तत्वों का समन्वय है तो दूसरे धनसंभालसु को भी उनका विश्लेषण इसी रूप में प्राप्त होता है।

विज्ञान का बीज तथ्य यह है कि उसके निष्कर्ष कभी धनित नहीं माने जाते। यदि और सामग्री और तत्त्व के आधार हमें प्राप्त हों तो संभव है कि हम ज्ञान के क्षेत्र में और जाने बढ़ सकें। धनसंभाल के क्षेत्र में प्रगाढ़ विज्ञान लेकर वैज्ञानिक अपने धर्म में प्रवृत्त होता है। धनसंभाल के प्रति प्रथम धन विज्ञान की सभी स्वीकार नहीं है। वह

पूर्वाज्ञित ज्ञान का परीक्षण और संचालन करते हुए उसके अग्रिम विकास के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। इन्हीं कुछ आधारभूत बातों से वैज्ञानिक दृष्टि की रचना होती है और इनके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष निश्चय ही प्रामाणिक होते हैं।

प्रामाणिकता के लिए अनुसंधान में हम कभी-कभी ऐसी प्रवृत्तियों में भी फँस जाते हैं जो वैज्ञानिक दृष्टि से अनुचित कही जायेंगी। स्वतः असिद्ध या अप्रामाणिक उद्धरणों का अवलम्बन इसी बात का उदाहरण है। कुछ विद्यार्थी दुनियाँ-भर के उद्धरण बटोर लेते हैं और कुछ ऐसे लोगों के उद्धरण भी देने लगते हैं जिनका ज्ञान बहुत कम लोगों को होगा। ऐसे उद्धरण-प्रिय अनुसंधित्सु किसी भी ऐसी कृति को नहीं छोड़ते जो कही, किसी प्रकार उन्हें दिख जाय और उसका तनिक भी सबब उनके कार्य से हो। परन्तु अप्रामाणिक पुस्तकों और लेखकों का उल्लेख प्रामाणिकता में योग नहीं देता। जो आवश्यकतानुसार उद्धरण देना बुरा नहीं है। उद्धरण बीच में भी दिए जाते हैं, निबन्ध के नीचे पाद-टिप्पणियों में भी दिये जाते हैं और निबन्ध के अन्त में भी दिये जाते हैं। परन्तु जो कथन अभी स्वतः साध्य हो अथवा जो लेखक अभी स्वतः प्रमाण रूप में गृहीत नहीं हुए हों उनको प्रमाण के रूप में उद्धृत करके कोई विशेष प्रभाव नहीं उत्पन्न किया जा सकता। प्रमाण देने में उद्देश्य होता है कि हमने जो अनुसंधान किया है और जिस बात की खोज की है वह दूसरे लोगों के द्वारा भी पुष्ट होती है, इसी दृष्टि से प्रमाण दिये जा सकते हैं, यह दिखाने के लिए नहीं कि हमने क्या-क्या पढ़ा है।

वस्तुतः गोघ-प्रबन्धों में देखा यह जाता है कि विद्यार्थी ने स्वयं क्या काम किया है। यदि उसके निबन्ध का सबब प्रयोगशाला में किए हुए कार्य से है तो उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके निष्कर्ष उसके स्वयंकृत प्रयोगों पर कहाँ तक निर्भर है। और यदि उसका निबन्ध तथ्यपरक है तो इस बात का विचार किया जाता है कि उसमें अनुसंधित्सु की अपनी स्वतंत्र देन क्या है।

न्यायशास्त्र में अनुमान को भी प्रमाण का एक साधन माना गया है, परन्तु अनुमान के विषय में और सावधानी से काम लेना पड़ता है। अनुमान की परिपाटी में जाने पर उसके साधनों और आचारों के ठोसपन की जाँच कर लेनी चाहिए, नहीं तो अच्छा है कि कोरे अनुमान के द्वारा हम किसी सत्य का पोषण न करें, प्रयोग और अवलोकन इन्हीं दोनों को अपना प्रधान साधन बनाएँ। अवलोकन की अनेक पद्धतियाँ हैं। इनमें तुलनात्मक पद्धति भी एक उपयोगी पद्धति है। तथ्यों का सकलन, उनका वर्गीकरण और इस वर्गीकरण के क्रम में बीच-बीच में जो तुलनीय हो उनकी आवश्यक तुलनाएँ ये तुलनात्मक पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

अनुसंधान के विषय में एक और प्रश्न हमारे सामने खड़ा होता है पूर्णता और अपूर्णता का। मैं कह चुका हूँ कि अनुसंधान की वैज्ञानिक दृष्टि का ही यह तकाजा है कि अनुसंधायक इस बात में कट्टरता न प्रदर्शित करे कि जो कुछ वह कह रहा है वस वही अन्तिम और परिपूर्ण सत्य है। वह बराबर इस बात का विश्वास करे कि फिर आगे भी उस विषय को बढ़ाया जा सकता है। और अधिक विचार, अधिक साधना करके वह स्वयं भी उपलब्ध ज्ञान की परिधि को बढ़ा सकता है तथा दूसरे भी उसके विषय के कई पहलुओं को लेकर उसे

घागे बड़ा सकते हैं। इसलिये अनुसंधान की पूर्णता केवल इसी धर्म में समझी जा सकती है कि प्रस्तुत अनुसंधान का स्तर ठीका हो और स्तर की ऊँचाई की माप का एकमात्र पैमाना यह है कि कोई अनुसंधायक अपनी शक्तियों द्वारा ज्ञान की सीमा को कहीं तक बढ़ा सका और फिर उसमें एसे क्या सूख उसने जोड़े बिनाको लेकर वह स्वयं प्रकृत बाप के समम दूसरे सहकर्मों उसके ज्ञान के विविध पक्षों को घागे बढ़ा सकें। प्रतिक्रिया विषयविद्यालयों में शोध प्रबन्ध की जाँच के जो मानक रखे गये हैं उनका सार यही है कि कोई शोध प्रबन्ध अपने विषय के ज्ञान की दिशा में और विशिष्ट योजदान करता है या नहीं ज्ञान को कुछ भी घाने बढ़ाता है या नहीं। और यह ज्ञान कैसे बढ़ता है इसकी जाँच दो बातों से करनी पड़ती है। या तो नये तथ्यों का प्रत्येक किया गया हो या अनुसंधायक ने अपनी स्वतन्त्र समामोचना सन्धि का परिचय दिया हो। अनुसंधान की सफलता का एक आधार नये तथ्य की उपसन्धि के बन्धन किसी ज्ञात तथ्य की अभिनव व्याख्या को भी प्रायः स्वीकार किया जाता है। अनुसन्धित्यु की समामोचना-सन्धि और विषय-बुद्धि के नये दो मुख्य प्रमाण हैं। इनमें से कम से कम एक का परिचय उसकी कृति में प्रबन्ध होना चाहिए। इसके प्रतिरिक्त प्रबन्ध की रूप-रचना उसकी साहित्यिक परिवेश और उसकी प्रस्तुत की सभी भी एक अत्यन्त आवश्यक घण्टे है।

अनुसंधान में जहाँ तक संभव हो सकेता से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। यह कठूता तथ्या-सम्बन्धी भी हो सकती है और केवल अभिस्मित-संबन्धी भी। इन दोनों प्रकार की कठूताओं से बचकर संयत भाषा और सतुलित विचारों को ही शोध प्रबन्ध में स्थापित मिलना चाहिए। कहा जा सकता है कि अनुसंधायक तो सत्य का प्रत्येक करते हैं तन्में इस बात की क्या परवाह कि उनकी बात किसी धर्म को प्रिय लगती है या अप्रिय। शोध-संधों को प्रस्तुत करने में भी यदि यही देखा जाय कि लेखक की बात लोगों को प्रिय लगे तब तो उपन्यास कविता तथा शोध प्रबन्ध में कोई भेद ही नहीं रहा। मैं मानता हूँ कि शोधकर्ता जातिप्रियता के लिये लाभापित नहीं रहता वह निर्विकल्प रूप से तथ्य का उद्घाटन करता है। किन्तु इसका धर्म यह भी नहीं होना चाहिए कि लोगो को स्वयं ही अपने विचार गहरा कर लिया जाय और अपने से भिन्न मत भासों को घपना समु बना लिया जाय। हमारे यहाँ का प्रायतः ता यह है कि सत्य भी नहें और प्रिय भी नहें। सत्य और प्रिय में विराट नहीं होना चाहिए। जहाँ विरोध हो वहाँ संभल जाना चाहिए, वरन् यही तब नहें सया है कि वहाँ भीन हा जाना चाहिए। यह ठीक है कि कभी-कभी प्रिय सत्य का भी उद्घाटन करता पड़ता है। शोध प्रबन्ध के लेखक को भी उससे डरना नहीं चाहिए। परन्तु ऐसी स्थिति में उससे कम से कम इस बात का तकाजा किया जा सकता है कि वह जिस प्रिय गत्य का उद्घाटन कर रहा है वह पुष्ट सापत्तरी पर रहता है और उनका अभिस्मित किसी मत में भी प्रतिष्ठ नहीं हो। प्रामाणिकता और कठूता का धर्म प्रतिष्ठता या बुराबह नचायि नहीं हो सकता।

एक विषय और है जिसका सीमाया अनुसंधान में की जानी चाहिए। यह विषय धूर्तार कार्य के लम्बड है। अनुसंधान के लिए प्रायः शोध कार्य का भी आधार ग्रहण करना पड़ता है। जैसे समाजविज्ञान धाराविज्ञान घपना लोक गान्धिय में शरीय कार्य करना पड़ता

है। क्षेत्रीय कार्य के लिये भी कुछ आवश्यकताएँ हैं। इसमें देखना पड़ता है कि कार्यकर्ता में क्षेत्रीय कार्य करने के लिए क्या योग्यता है। योग्यता देख चुकने पर यह भी विचार करना पड़ता है कि वह क्या अधिकार लेकर जायगा। विद्यार्थी होने के अतिरिक्त क्षेत्रीय कार्यकर्ता के पास कुछ अधिकार होने चाहिए, ये अधिकार चाहे किसी मस्था की ओर से प्राप्त हो चाहे सरकार की ओर से। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय कार्य में द्रव्य की भी आवश्यकता पड़ती है। बिना द्रव्य के क्षेत्रीय कार्य करना कठिन होता है। पैसा चाहे अपना हो चाहे सरकार का, चाहे किसी मस्था का, उसकी जरूरत तो पड़ती ही है। भाषा, लोकसाहित्य, अर्थशास्त्र, अथवा समाजशास्त्र-सम्बन्धी विषयो पर अनुसंधान करनेवाले क्षेत्रीय कार्यकर्ता को जनता का समय और सहयोग लेना पड़ता है। इस कार्य में सदा अनुनय-विनय करने अथवा परोपकार की प्रेरणा देने से ही काम नहीं चलता। क्षेत्रीय कार्यकर्ता को जिन लोगों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है उन लोगों के समय का भी कुछ मोल होता है। वे काम-काज में लगे हुए होते हैं। संभव है, अपना समय योही नष्ट करना उन्हें नहीं रुचे। एकाध वार कोई एक दो घण्टे दे सकता है, पर रोज साथ बैठने से और दुनियाँ भर की बातें पूछने से प्रत्येक व्यक्ति तग आ जायगा। जिनसे भी क्षेत्रीय कार्यकर्ता को एक दिन का समय दे दिया, उसकी यदि वह कोई बैठानिठल्ला नहीं हुआ तो, उस दिन की रोजी गई। अतः उसके लिए पैसे का प्रबन्ध करना आवश्यक हो जाता है।

क्षेत्रीय कार्य की एक दूसरी समस्या है—सहकारियों और केन्द्रों का चुनाव। सहकारी उत्साही, योग्य तथा कई होने चाहिए। केन्द्र चुनने में गड़बड़ी हो गई तो काम ठिकाने से आगे नहीं बढ़ता। कहीं-कहीं से किन-किन लोगों से सामग्री संगृहीत की जाय, इस विषय में भी विचार करना पड़ता है। कैसे लोगों का साक्ष्य लें, यह विषय के अनुसार निश्चित करना पड़ता है। विषय के अनुसार साक्ष्य की प्रणालियाँ भी बदल जाती हैं। इसके बाद लोगों से पूछने के लिए प्रश्नावली तैयार करनी होती है। इन्हीं प्रश्नों पर क्षेत्रीय कार्य की सफलता निर्भर है। लेकिन इन प्रश्नों का निश्चित सिद्धान्त नहीं बताया जा सकता। प्रश्नावली का प्रारूप इस बात पर निर्भर करेगा कि किस प्रयोजन और उद्देश्य से हम अनुसंधान कर रहे हैं। यदि अभीष्ट उद्देश्य के अनुसार प्रश्नावली तैयार हुई तब तो सफलता निश्चित है, अन्यथा यदि प्रश्नावली उद्देश्य के असम्बद्ध और विखरी हुई तब प्रयास निष्फल जाता है। इसलिए प्रश्नावली तैयार करने में बहुत सोचना-विचारना पड़ता है।

वस्तुतः अनुसंधान के लिए जो क्षेत्रीय कार्य किया जाता है उसकी दीक्षा किसी अच्छे गुरु से ले लेनी चाहिए। जिसको स्वयं क्षेत्रीय कार्य का कुछ अनुभव हो उसके साथ-साथ काम करके हम इस दिशा में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। पहले के क्षेत्रीय कार्यों के प्रकाशित प्रतिवेदनो के अध्ययन से हम अपने अनुभव को बढ़ा सकते हैं।

सच पूछिए तो अनुसंधान का विषय ही ऐसा है जिसमें गुरु-शिष्य का मन्वध बहुत ही आवश्यक हो जाता है। इसीलिए विश्वविद्यालयों में शोध-प्रबन्ध के लिए एक निर्देशक की आवश्यकता नियमतः स्थिर कर दी गई है। परन्तु निर्देशक और अनुसंधित्सु यदि एक स्थान में न हों तो उनमें सम्पर्क नहीं रह पाता। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि

कुछ परीक्षा-परक विश्वविद्यालयों में सतही गट कमी-कमी तो केवल यी ही बार होती है—
 पढ़ाई निर्देशक की स्वीकृति के समय निर्देशक के हस्ताक्षर कराने के लिए और दूसरी सीध
 प्रबन्ध टीमार हो जाने के बाद उसे प्रस्तुत करने के लिए । फिर भी अनुसंधान तो होते ही
 रहते हैं उपाधियाँ भी मिला करती है लेकिन ऐसी स्थिति में अनुसंधान का स्तर क्या
 होगा इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है । अपन हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ
 में हमने इसीलिए निर्देशकों और अनुसंधितसुष्मा के बीच निरन्तर सम्पर्क की व्यवस्था रखी
 है । वास्तव में अनुसंधान का स्तर अभी ऊपर उठ सकता है जब गुरु-शिष्य दोनों मिलकर
 किसी सत्य के अन्वेषण में लगे । स्वाध्याय और पारस्परिक विचार-विनिमय अनुसंधान के
 निराला आवश्यक साधन है ।

अनुसंधान के सामान्य तत्त्व*

आज का विषय अनुसंधान के सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखता है। हम अनुसंधान करते हैं, शोध करते हैं, गवेषणा करते हैं, क्या उसके सिद्धान्त हैं, या हो सकते हैं? इस पर हमें विचार करना था। जैसा कि अभी हमारे विद्वान् वक्ता—हमारे सचालक महोदय ने आरम्भ में बतलाया था कि वस्तुतः अनुसंधान या गवेषणा एक ऐसी वस्तु है जिसके सम्बन्ध में कोई शाश्वत सिद्धान्त बनाकर नहीं चला जा सकता। और प्रत्येक व्यक्ति को, जो अनुसंधान में प्रवृत्त होता है अपनी मनोवृत्ति, अपनी तपस्या और साधना के अनुसार और अपने सत्कारों के अनुसार अपने अनुसंधान के लिए सिद्धान्त प्रस्तुत करने पड़ते हैं। यही कारण है कि एक व्यक्ति एक प्रकार की वस्तु का अनुसंधान करता है, दूसरा व्यक्ति दूसरे प्रकार की वस्तु का अनुसंधान करता है। और यह कभी सभव नहीं है कि एक व्यक्ति जिस वस्तु का अनुसंधान कर रहा है, दूसरा व्यक्ति भी उसी प्रकार से उस वस्तु का अनुसंधान प्रस्तुत कर सके, क्योंकि जो व्यक्तिगत भेद है वह मूल प्रवृत्ति के अन्दर प्रस्तुत है। और यही पर उसकी व्यक्ति-निष्ठता होती है अन्यथा अनुसंधान का सारा क्षेत्र व्यक्तिपरक न रह कर वस्तुपरक हो उठता है। ऐसा होते हुए भी कुछ सामान्य वस्तुएँ या तत्व या बातें ऐसी हैं कि जिन का ध्यान रखना प्रत्येक अनुसन्धित्सु के लिए आवश्यक होता है। उन पर अभी पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। लेकिन मैं एक प्रकार से उनको दुहराता हुआ सभवतः उसमें कुछ अपनी भी बात कह दूँ। वह यह कि अनुसंधान के विषय का और क्षेत्र का चुनाव, अनुसंधान के लिए बहुत आवश्यक है। यद्यपि यह ठीक है कि जो प्रकृत अनुसन्धित्सु होते हैं, उनमें स्वभावतः ही किसी बात को जानने की प्रबल जिज्ञासा पैदा होती है। फलतः वे उसका अनुसंधान करने के लिए आगे बढ़ते हैं। ऐसे प्रकृत अनुसन्धित्सुओं के सामने तो विषय अपने आप प्रस्तुत हो जाते हैं। यह भी सच है कि उनके कार्य को हम “एकेडेमिक रिसर्च वर्क” नहीं कह सकते। वह तो सहज ही अनुसंधान में प्रवृत्त होते हैं। न्यूटन किसी यूनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त करने के लिए अथवा किसी आर्गनाइज्ड या व्यवस्थित षड के आधीन रिसर्च करने के लिए प्रवृत्त नहीं हुआ था। प्राकृतिक व्यापार को देखकर उसके मनमें एक अदम्य जिज्ञासा पैदा हुई जिससे विकल

*मूलभाषण विद्यापीठ के सचालक डा० विश्वनाथ प्रसाद का था। वह अन्यत्र निबन्ध के रूप में दिया गया है।

हो वह उस व्यापार के रहस्य को उद्घाटित करने के लिए प्रयत्नशील हुआ और उसके पीछे पड़कर उसने उस फस को प्राप्त कर लिया। यह प्रकृति प्रकृत या स्वभाव नहीं जायगी। यदि इस प्रकृत प्रकृति को मैं समझता हूँ मूक मिल जाय तो बहुत ठीक न मूक मिले तो भी वह मिगारा ही धनवा स्वम अपना गुद बतकर धामे बढ़ता है और धामे मूक परा कर लिया करता है। हम सोच मही बैठकर रिसर्च की बात करते हैं तो उस प्रकार की रिसर्च की बात नहीं करते हैं। हम तो एक व्यवस्थित रिसर्च की बात कर रहे हैं। नियम ही हम उन प्रकृत अनुसंधान करने वाले व्यक्तियों अपना गवेषणा करन वाले व्यक्तियों के भागों को देखकर धाम अनुसंधान का एक स्वरूप बना कर सकते हैं। जमीने के आधार पर व्यवस्थित प्रवासी निर्धारित करके यह कहा जा सकता है कि अनुसंधान में भी एक विधि हो सकता है। धत विषय के निर्वाचन में हम धाम जतने स्वतन्त्र मही किसी अनुसंधान विषय के लिए हमको एक व्यवस्था के अन्तर्गत रिसर्च प्रस्तुत करनी होती है। उस व्यवस्था में हमको निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है ऐसे अनुसंधान व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, जो उस अनुसंधान के क्षेत्र से परिचित हैं और बता सकते हैं कि कौनसा विषय कहाँ-कहाँ पर किस-किस रूप में प्रस्तुत हो रहा है और उस या उन विषयों में धाम कितना क्षेत्र अनुसंधान योग्य क्षेत्र है। उस क्षेत्र को लेकर भी यदि धाम प्रकृत हो तो धाम संभवत या तो कुछ मही बायें निकाल कर दे सकेंगे या कुछ सर्वश्रेष्ठ नयी रिसर्च में प्रस्तुत कर सकेंगे एक नये रूप में नयी व्यवस्था सहित उसका दे सकेंगे। हम जो विषय चुनें उसके संबंध में यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि या तो हम क्षेत्र के विस्तार की दृष्टि से चुनें। एक क्षेत्र को हम लें और उसके विस्तार के साथ पूरे क्षेत्र में जितना भी उतने सम्बन्धित हमारा क्षेत्र है उसका देख। इस प्रकार से क्षेत्र का विस्तार, और फिर क्षेत्र का एक मकोष देना ही बीजे हमें ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है। कितने ही जो विज्ञान अनुसंधानकर्ता हैं वे बतलाते हैं कि वहाँ तक हो सके क्षेत्र छोटा होगा चाहिए। छोटा क्षेत्र चुनने का यह धमिप्राय नहीं है कि उस क्षेत्र में हमें कुछ करने के लिए नहीं है। छोटे क्षेत्र में गहराई भी धमिक मिलती है और विस्तार भी हो सकता है। उदाहरण के लिए हम किसी एक मीक नया को लें। तो उसका क्षेत्र छोटा तो हो गया क्योंकि हमन एक ही मीक-नया भी है। सभी या बहुत ही थोड़ा नया मही ली। पर हम छोटे क्षेत्र में गहराई भी हो सकती है और विस्तार भी। गहराई की दृष्टि से हम जो नया के अनुसंधान में—

१—उसके निर्माणक तथा का विस्तार

२—उन तत्वों के लोगों और

३—उनके मर्मा वा उद्घाटन

४—उनके माप सतन्त्र मीक-मानम्

५—उनकी न्यायूमि के साथ विज्ञान और क्षेत्र दर्शन तथा

६—उनमें नया-नया धामि वा गमाव्य कर सकते हैं। वीं गहरे से गहरे उतरते जा सकते हैं। मीक नया में पर्यटित और नया के इतिहास की भी धाम सबते हैं। पर हमन

मार्ग अनुसंधान का विस्तारवादी भी हो सकता है। जैसे वेनफे ने कुछ कहानियों की एक स्थान से दूसरे पर जाने की यात्रा का अनुसंधान किया, आप उस एक लोक-कथा के रूप और रूपान्तरों का क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से अनुसंधान कर सकते हैं, और समस्त विश्व की लोकवार्ता में उस 'कथा' के स्वरूप का उद्घाटन कर सकते हैं। इस प्रकार कुछ छोटे या सीमित विषयों का ऐसा क्षेत्र-विस्तार भी हो सकता है। इसके लिए आपको बहुत यात्रा करनी पड़ेगी। और यहाँ से होकर वहाँ तक पूरे क्षेत्र में आपको यात्रा करनी पड़ेगी। उस यात्रा के लिए कितने ही प्रकार के साधनों का हम लोग उपयोग कर सकते हैं, जैसे अभी सकेत किया गया कि हम प्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों का, सरकारी कर्मचारियों का और अपने जो अन्य भी साधन है उनका, अनेक प्रकारों से उपयोग कर सकते हैं। वहाँ के रहने वालों से संपर्क स्थापित कर के हम उनका उपयोग कर सकते हैं। लेकिन यह छोटा क्षेत्र है, फिर भी विस्तृत क्षेत्र है। लेकिन कभी-कभी यह 'छोटा क्षेत्र गहरा क्षेत्र भी हो सकता है। लोक कथा के गहरे अध्ययन की बात ऊपर बताई जा चुकी है। किसी एक कवि की रचना को लेकर उसके कई क्षेत्र बनाये जा सकते हैं जैसे—तुलसीदास को लिया। तुलसीदास के अदर किसी ने उनकी रूपक प्रणाली को लिया। सूरदास जी को लिया, उनकी रूपक प्रणाली को लिया या उनकी प्रतीक प्रणाली को लिया। उनके वात्सल्य को लिया। इसके लिए हमें इतना विशेष वाहुर जानने की जरूरत नहीं होती। परन्तु सूरदास के अथवा तुलसीदास के मानस में जितने गहरे हम उतर सकते हैं, उतना पूरा गहराई में हमें उतरने की आवश्यकता होगी। इसका भी जैसा कि विविध रूपों में बताया गया, स्तर होता है, हम इसी एक चीज को अनेक स्तरों पर, ऐतिहासिक आधार पर, दार्शनिक आधार पर, आध्यात्मिक आधार पर, भाषा के अवयवों के आधार पर, साहित्यिक मूल्यों के आधार पर हम इनका विचार प्रस्तुत कर सकते हैं। अतः पहली बात जो हमारे सामने आती है वह है विषय का चुनाव। जहाँ तक हो सके वह इस दृष्टि से होना चाहिए कि वह छोटा तो हो लेकिन उसको हम परिपूर्णता के साथ प्रस्तुत कर सकें। यह ठीक है जैसा कि अभी बतलाया गया कि ससार में परिपूर्णता का कोई दावा नहीं कर सकता और कोई भी अनुसंधित्यु और कोई भी विद्वान यह नहीं कह सकता कि उसका ज्ञान परिपूर्ण है, अंतिम है। लेकिन वह यह कह सकता है कि अपनी चेष्टाभर उसने उसमें परिपूर्णता लाने की चेष्टा की है। परिपूर्णता जिसे कहते हैं उसमें वह सामर्थ्यांनुरूप पूर्णता आनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि जो विषय उसने लिया है, उसे यह बताना चाहिये कि उस का अध्ययन उसके पूर्व किसी ने किया या नहीं, किया तो उसका स्वरूप कब कब क्या क्या रहा। दूसरे शब्दों में उसके अध्ययन के इतिहास का उसे पता होना चाहिए, तथा वह बताना सकता है कि वह जो कुछ कहने जा रहा है, वह कहाँ तक नयी देन है, या न्यू कन्ट्रीव्यूशन है। उसके इतिहास के ज्ञान के साथ उसके पूरे क्षेत्र का भी उसे ज्ञान होना चाहिए। यानी अपने विषय के भौगोलिक क्षेत्र का भी परिचय उसे होना चाहिये। यह परिचय भी यथासंभव प्रामाणिक होना चाहिये। यहाँ तक की बातों को दुहराये तो कह सकते हैं कि पहली बात है, विषय। विषय जहाँ तक हो सके, सीमित हो, मरुचित हो, लेकिन इतना उसका क्षेत्र हो, कि हमें

उस पर काम करने के लिए, उसमें कोई नई बात प्राप्त करने के लिए पूर्ण प्रयत्न हो। दूसरी बात है परिपूर्णता की। मैं समझता हूँ सिद्धांत यह आवश्यक होता है कि जो जिस विषय पर प्रसंगिक करने जा रहा हो उसको उसके इतिहास का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, और उसमें उसकी पूरी रीति तथा निष्ठा होनी चाहिए। उसे अपनी ओर से यह कहने में संकोच न हो कि मैं उसको अपनी शक्ति भर पूर्ण बनाने की चेष्टा की है। तीसरी बात सिद्धांत यह है कि उक्त बातों के साथ साथ वहाँ तक उससे मत पड़ा है वहाँ तक उसने प्रतिपादन की वस्तुनिष्ठ बनाने की चेष्टा की है। वस्तुनिष्ठ बनाने और व्यक्तिपरक न होने देने के माने यह नहीं कि उसमें उसका अपनी व्यक्तिपरक नहीं रहेगा या उसमें प्रस्तुत ज्ञान उस व्यक्ति से नितांत प्रसन्न हो जायगा। ऐसी बात नहीं है लेकिन या मूल बात है यह यह है कि कहीं प्रायः विषय-वस्तु को व्यक्तिपरक समझ कर अत्यंत भावना में न वह जाएँ और व्यक्तिपरक ऐसे ही निष्कर्ष प्रायः प्रस्तुत न कर दें। अधिकतर जिनकी न परोसा ठीक हुई होती है और न जिनके लिए प्रमाण मिलते हैं, न जिनके लिए कोई इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत होता है ऐसी बातें भी हम लिख देते हैं। क्योंकि मुझे कोई भीषण नहीं है कि वह इस प्रकार की है या मुझे कुछ लिखना है इसलिए मैंने कुछ भी लिखकर उसको प्रस्तुत कर दिया। ऐसी व्यक्तिपरकता बर्जित है। क्योंकि इसमें प्रामाणिकता अंतर्गतता विरोधाभास वस्तुनिष्ठता ज्ञानशीलता प्रायः दोष स्वभाव का आते हैं। प्रायः किसी 'सत्य' का उद्घाटन करने के लिए ही प्रयत्न हुए हैं। उसके लिए ही प्रायः प्रमुख नाम या शब्दों का है। वह 'सत्य' ज्ञान का सत्य है। प्रायः का सत्य भी ज्ञान का सत्य होकर प्राप्ता चाहिए। वस्तु-निष्ठ होने का अर्थ यह है कि जिस बात को प्रायः कहे वह जन्मे ही ही प्रायः की व्यक्तिपरक बरतना हो लेकिन वह वाहरी प्रमाणों से इतिहास से मुक्तिमें से इस प्रकार से पुष्ट हो कि वह प्रायः की व्यक्ति-निष्ठ न रहकर वस्तुनिष्ठ प्रतीत हो। यह एक बहुत बड़ी शक्ति है। यदि हम इसको ध्यान में नहीं रखते तो प्रत्येक प्रसंगिक प्रसंग या तो कविता बन जायगा या इसकी काव्यात्मक भावनाओं का या भावार्थों का उद्घाटन मात्र ही जायगा। साहित्यिक प्रसंगिकता में इस प्रकार की व्यक्ति-निष्ठता का बहुत भय होता है। मान लीजिए मूरघस भी पर प्रायः प्रसंग लिख रहे हैं या लोकसाहित्य पर लिख रहे हैं तो इसमें प्रायः को अनेकों भावार्थों का स्पष्ट मिलने। अब यदि प्रायः ऐसे स्वभाव पर अपनी मुख्यता या अपने ही भावार्थों का वर्णन करने लगे जायेंगे या अपने ध्यान के भावार्थों को ही लक्ष्य बनाने लगे तो प्रायः मूर या लोकसाहित्य के सत्य का उद्घाटन नहीं कर रहे होंगे। प्रायः उसकी प्रतिक्रिया में अपनी प्रमुखता या अपने ध्यान के सत्य का वर्णन कर रहे होंगे। यदि इसे बौद्धिक कहे तो फिर इसे एकैकैमिक तो कम से कम नहीं कहा जा सकेगा। तो इसलिए यह बहुत आवश्यक है। हम उसको इस प्रकार की व्यक्तिपरकता से बचावें और वस्तुनिष्ठ बनाने की चेष्टा करें। वस्तु के स्वभाव को हृदयमय करें, उनका विश्लेषण कर वस्तुत्व में उन तत्वों को उद्घाटित करें जिनसे उसका निर्माण हुआ है उन तत्वों का वर्गीकरण करें उनके इतिहास की ओर विकास की रैनें उसमें हीमर्त्य के मूल्य का निरूपण करें। वस्तुनिष्ठ बनाने के साथ ही उसकी वैज्ञानिकता का

सम्बन्ध है। हम जो प्रवचन प्रस्तुत करें वह वस्तुनिष्ठ तो ही ही। उसे वैज्ञानिक स्तर भी प्राप्त हो। और वैज्ञानिक स्तर प्राप्त करने के लिए मैं समझता हूँ कि जहाँ इस प्रकार की परिपूर्णता की जरूरत है वहाँ उसमें युक्त वस्तुनिष्ठता या युक्तियुक्तता होने की भी तर्क युक्तता आवश्यकता है, कार्य-कारण परंपरा में गुंथे होने की आवश्यकता है। इस बात की बहुत आवश्यकता है एक पुष्ट कार्य-कारण परंपरा में बाध कर आप अपने अनुसंधान को चलायें। कार्य-कारण की पुष्ट परंपरा इसलिए कि 'तर्क-प्रणाली' में भौतिक कार्य-कारण परंपरा के जैसा ठोस धरातल नहीं होता। अतः यह सावधानी रखने की आवश्यकता है कि प्रत्येक युक्ति और उसका आधार यथा संभव निर्भ्रम हो। उसमें कोई लाजिकल फॉलसी (Logical fallacy) या तर्क-दोष न हो। यह तार्किक विचारणा की एक परंपरा रिसर्च के कार्य में अवश्य होनी चाहिए। इस परंपरा का जहाँ हमें अभाव दिखलाई पड़ता है वही मालूम पड़ता है कि या तो इसका एकेडेमिक स्तर गड़बड़ा रहा है या कि लेखक उसके साथ ईमानदारी नहीं करते रहते, अपने विषय के साथ ईमानदारी नहीं करते रहते, या वह स्वयं अपने साथ ईमानदारी नहीं करते रहते और टालने के लिए या प्रमाद में या हलके रूप में इस कामको समाप्त करने के लिए इसको इस प्रकार से वह प्रस्तुत कर रहे हैं। यह भी कहा जा सकता है कि संभवतः उसमें उस स्तर तक पहुँचने की क्षमता ही नहीं है। क्षमता का न होना बहुत भयानक कमी है।

वास्तविक महत्व की बात यह है कि आप ठोस रूप में ठोस निष्कर्षों के रूप में प्रत्येक बात लिखें। ऐसे निष्कर्षों के रूप में जिनको कि आपने प्रमाण से पुष्ट कर रखा है, जिनको कि आपने युक्ति से सिद्ध कर रखा है और जिनको कि आपने, अगर आपके पास ऐसी अपेक्षित मेधा है कि आप उसे अधिक से अधिक गणितीय अक-सकलन, रेखा-चित्राकन आदि सपुष्ट बनाकर के आपने प्रस्तुत किया है। इन्हें ही आपने अपने अनुसंधान में स्थान दिया है। मैं इस बात को मानता हूँ कि साहित्य को भी मैथेमैटिकल स्तर पर प्रस्तुत किया जा सकता है। गणितीय विधान से साहित्य का भी अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है, और उनका उपयोग अनेकों प्रकार से होता है। यह भी हो सकता है कि कोई कहे साहित्य की तो इस तरह से आप हत्या ही कर देना चाहते हैं तो फिर उसमें रस ही नहीं रह गया, साहित्य ही क्या रह गया? पर यथार्थ बात यह है कि जब डाक्टर शरीर को चीर-फाड़ करता है, तो वह न स्पन्दन की चिन्ता करता है, और न रक्त की चिन्ता करता है, और न वह यह सोचता है कि उसमें प्रेम की धारा बहर रही है उस मनुष्य में या करुणा की धारा बहर रही है या इसमें घृणा की धारा बहर रही है। वह तो अपना काम करता है। तो जो अनुसंधित्सु हैं वह भी जब तक रस की ही बात न करें, रस के ही ऊपर जबतक विचार न करें तब तक उसको विज्ञान के अन्दर बाँध कर, गणित के अन्दर बाँध कर, रेखाओं के अन्दर बाँध कर उसका एक विशेष रूप आपके सामने रख देगा और कहेगा कि यथार्थ रूप तो यह है और जो कुछ है वह तो केवल हड्डियों के ऊपर मांस इत्यादि आपने चढ़ाकर उसे प्रस्तुत कर दिया है। वह कला-रुच्य आप

करते रह सकित्त यथाय उचता मुद रूप यह है । यही मुद ज्ञान की विज्ञाना घोष की व्युत्पत्ति जो प्राप्तो बतायो बहु है । तो मुद ज्ञान के लिए तो इस प्रकार की चोत्र प्राप्तक होती है । तो मे यह समझता हूँ कि साहित्यिक प्रभुसंधान में भी हम इस प्रकार की प्रणालियों का उपयोग कर सकते हैं और इस प्रकार से कुछ मूल विद्वानों को हम अपने सामने रख सकते हैं ।

स्तर विषयक विचारयें—

यह सामान्य धारणा है कि हिन्दी के प्रबन्धों का स्तर या ठी कुछ होता ही नहीं या परमंत मीचा होता है ।

बहुधा तो ऐसी धारणाएँ के करते हैं जो हिन्दी से यथावत् में परिचित नहीं होते जो स्वयं डाक्टर होते हैं और प्राचीन परिपाटी में डाक्टरी प्राप्त करने के कारण जिन्होंने एक रीत भी साथ साथ प्राप्त किया है—मे जब किसी हिन्दी डाक्टर से मिलते हैं तो हम पर यह प्रभाव पड़ता है कि

१ यह हिन्दी बाला कुछ डीला डाला है कुछ रीत रीत की बात नहीं करता कुछ डाक्टरीपन हाँकता नहीं ।

२ यह बात करता भी है तो वेस विदेश के विद्वानों के नाम नहीं गिनाता । कुछ ऐसे सोर्नों के नाम गिनाता है जिनसे वह विदेशी मानसी परिचित नहीं ।

३ वह यह भी समझता है कि इसे न तो विदेश जाना पड़ा न इसका परीक्षण ही कोई विदेशी हुआ भारतीय परीक्षण के पास जान नहीं ।

४ वह कहता है कि मे वैचता हूँ कि हिन्दी बाले परिभम करते ही नहीं इन्हें में कभी पुस्तकालया में बैठकर पढ़ते नहीं वैचता ।

५ वह कहता है कि हिन्दी बालों को उपाधि कुसामह और सामबौह मान से मिल जाती है ।

६ यह भी वह कह सकता है कि धर्म विषयों के प्रबन्धों की जहाँ विदेशों के विद्वानों में और पर्थों में होती है हिन्दी की कहाँ होती है ।

ऐसी धारणाओं और धारणाओं का मुख्य कारण हिन्दी के डाक्टरों का स्टेटस है । धारणाक की अपनी हीनता मान-मन्वि का भी इसमें शामिल है । वह हिन्दी को संवेची सासको और मुसलमानी सासको की परंपरा में ही नहीं संस्कृतियों की परंपरा में भी गैरवादी साया समझता धामा है वह बहुत से विद्वानों की तरह यह भी समझता रहा है कि हिन्दी तो कल से धूरु हुई है उसमें है ही क्या ? साहि । फिर पशुली धारणा हिन्दी तत्त्वों के धीम की धारणा है ।

दूसरी धारणा का संभव हिन्दी से इसलिए नहीं कि हिन्दी के विद्वान भारत में ही हैं वह विदेशी के विद्वानों के प्रमाण पर नहीं पतपती जैसे धर्म विषय पतपते हैं । और यह औरव की ही बात है ।

यही बात तीसरी युक्ति के सबध में है। हिन्दी वाला तो यह प्रतीक्षा कर सकता है कि उसके प्रमाण के लिए विदेश से लोग हिन्दी सीखने भारत में आयेंगे।

चौथी बात के सबध में तथ्य यह है कि आज इस स्वतंत्र भारत में भी हिन्दी प्रदेश के ही महाविद्यालयों के पुस्तकालयों में वह पुस्तकें और वह सामग्री नहीं जिसे पढ़ने के लिए हिन्दी अनुसन्धित्सु पुस्तकालयों में जाये वह पुस्तकें और वह सामग्री नहीं जिसे पढ़ने के लिए हिन्दी अनुसन्धित्सु पुस्तकालयों में बैठे। उसे तो एक एक पुस्तक के लिए दर दर भटकना पड़ता है। इतिहास और अर्थशास्त्र, अंग्रेजी आदि की पुस्तकें तो पुस्तकालय से मिल जायेंगी, हिन्दी की नहीं। अतः यदि हिन्दी का अनुसन्धित्सु परिश्रम करता भी है तो वह दूसरों को ऐसे रूप में दिखायी नहीं पड़ता—जब कि यथार्थ परिश्रम उसे दूसरों से अधिक पड़ जाता है।

पाँचवीं बात यदि सत्य है तो प्रत्येक विषय के लिए सत्य है। और खेर व्यभिक्त विशेष से सर्वोद्धत हो सकती है, विषय की अपनी योग्यता से इसका कोई सबध नहीं।

छठी बात का वही उत्तर है जो दूसरी तीसरी का है।

फलतः इस कोटि की आलोचनाओं में तथ्य कम और अहंकार और अज्ञान अधिक होता है। इनके आधार पर हिन्दी के स्तर को क्षुद्र मानने का कोई कारण नहीं।

किन्तु दूसरों कोटि के आलोचक हैं जो कहते हैं कि निश्चय ही हिन्दी के प्रबन्धों का स्तर नीचा है—क्यों कि—

१ हिन्दी के अनुसन्धित्सु सामान्य पुस्तक और प्रबन्ध ग्रंथों में अन्तर ही नहीं समझते ?

२ उनकी अनुसंधान-प्रणाली और रूप-रेखा में वैज्ञानिकता का अभाव रहता है।

३ उनके यहाँ अनुसंधान की पुष्ट परंपरा नहीं, और योग्य निर्देशक मिलते ही नहीं।

४ वे अपने प्रबन्धों में वैज्ञानिक तार्किकता नहीं ला पाते।

५ वे वास्तविक प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाते क्यों कि वे नहीं जानते कि किस कोटि के प्रमाण को मान्यता दी जानी चाहिए। और किस कोटि के प्रमाणों को नहीं।

६ वे प्रबन्ध में दिए गये लक्ष्यों को निभ्रान्त करने के लिए कोई उद्योग नहीं करते, अतः तथ्य विषयक भूलें भी रहती हैं।

७ वे किसी भी तथ्य को उपयुक्त परंपरा और तारतम्य में देखने के अभ्यस्त नहीं।

८ वे शब्दों के विज्ञान से अपरिचित हैं—

९ वे साहित्य और कला का निजी ज्ञान नहीं रखते।

१० उनके अध्ययन की सीमा बहुत सकुचित रहती है, वे उसे विस्तृत नहीं करना चाहते।

११ वे यह भी नहीं जानते कि क्या सम्मिश्रित किमा बाय क्या छोड़ा जाय ?

१२ न वे यह जानते हैं कि एक अनुसंधान के प्रबन्ध को किस सीमा में प्रस्तुत किया जाय ।

१३ माया भी उनको सखी होती है । ऐसी स्थिति में बीसिस का स्तर बना हो सकता है ।

यथार्थ यह है कि उक्त बातों पर ही किसी अनुसंधान और प्रबन्ध का स्तर निर्भर करता है । उक्त बातों पर ही हम सोच किञ्चित् विस्तार से करना करें—

पहली बात सामान्य पुस्तक और प्रबन्ध के भेद की है । यदि अनुसंधानित्व इस भेद को नहीं जानता या यह कुछ भी नहीं जानता । कई भेद इस संबंध में बहुत स्पष्ट हैं—

१ सामान्य पुस्तक सामान्य माध्यताओं के आधार पर होती है वह प्रत्येक बात और प्रत्येक शब्द की प्रामाणिकता के लिए व्यग्र नहीं होती । प्रबन्ध में प्रत्येक शब्द समभाव होता है ।

२ सामान्य कृति की सीमामें साहित्य माधुर्य और भाव संस्पर्श आदि सभी के लिए स्थान है । उक्तकी रोक बनाने के लिए भाषा कुछ इधर-उधर की बातें भी संघ से वे होने लगे बुरा नहीं माना जायेगा—नहीं ये बरन् प्रशंसा माना जायगा ।

३ सामान्य कृति में यदि भाषा अपने मन उच्च और प्रशंसनीय की कोई वस्तु भी भी वे लगे बहू कम जायगी किन्तु प्रबन्ध में एक शब्द भी अनावश्यक नहीं सहज किमा जा सकता ।

४ सामान्य कृति का सद्देश्य सर्व साधारण को आकर्षित करने का होता है, प्रबन्ध का विशिष्ट लक्ष्य होता है ।

५ सामान्य कृति सामान्य भाषा में होती है, प्रबन्ध पारिभाषिक तथा साहित्यिक शब्दों में लिखा जाता है ।

६ सामान्य कृति में सामान्य वर्तन परोक्ष है, प्रबन्ध में "बीरोनैस" समग्र खुदाय वर्तन होता है ।

७ प्रबन्ध कृति के लिए वैज्ञानिकता अनिवार्य है ।

इत विद्वान से स्पष्ट है कि प्रबन्ध और सामान्य कृति में मौलिक अन्तर है । या सामान्य कृति के लक्षण होते हैं वे जब 'प्रबन्ध' लिखने बैठते हैं तो उनका धर्म साथ छोड़ देता है वर्या कि उन्होंने जिन शब्दों को अपने संबंध में समझे करने का अभ्यास किया है व यही त्याग्य होते हैं । वह एक को अपनी पुस्तकों से कुछ सामग्री इकट्ठा कर अपने निबन्ध तथा प्रबन्ध का रूप ढाँचा कर देता है प्रबन्ध के समक उक्त आधार प्रबंध की प्रामाणिकता या वैधता हावी है और उक्त विषय पर लिखी गई उक्त समय तक की प्रत्येक वस्तु बढ़ती पड़ती है । सामान्य कृति में भूत में बातें रपा जाता है प्रबन्ध में भूत में वे दाने निवास-निवास कर संज्ञाये जाते हैं । सामान्य लेखक प्रबन्ध लिखते समय इस जग-रवाग की शैली से परहना उठता है, वह भूत और दान के भेद की भी कभी-कभी नहीं समझ जाता ।

अतः यह अन्तर अवश्य ही समझ लेना चाहिए और स्पष्ट ही प्रबन्ध लेखन के लिए आवश्यक मनोवृत्ति बना ली जानी चाहिए।

इस तथ्य को समझने के उपरान्त सब से मुख्य कार्य है अपने अनुसंधान की प्रणाली निश्चित करना और उसके लिए रूप-रेखा बनाना।

यह सबसे कठिन कार्य भी माना जा सकता है। इस सबध में कुछ बातें तो विशेषतः ध्यान में रखनी चाहिए।

पहली यह कि यथासंभव यह प्रणाली अनुसंधान को ही निश्चित करनी चाहिए। प्रणाली के सबध में उसे रूप-रेखा बना लेना चाहिए—हम इस तैयारी में कभी-कभी महीनों लगा सकते हैं। क्यों कि पहले तो उसे यथासंभव समस्त प्राप्य सामग्री का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए—

१ जितनी भी प्रकाशित तथा प्राप्य पुस्तकें हैं उसकी सूची उसे बना लेनी चाहिए।

२ वे कहां प्राप्य हैं इसका भी पता लगा लेना चाहिए।

३ उनमें कौन-कौन से विषय और अध्याय पठनीय हैं इसका संकेत लिख लेना चाहिए।

फिर, उसे यह देख लेना चाहिए कि उस समस्त विषय का ऐमा कौनसा अंश या पहलू है जिस पर अभी प्रकाश नहीं डाला गया है। उसी को अपने लिए अनुसंधान का विषय बना लेना चाहिए—तब यह सोचना चाहिए कि वह इसका अनुसंधान किस प्रणाली से करेगा।

अनुसंधान की संभवतः निम्न लिखित वैज्ञानिक प्रणालियाँ हो सकती हैं—

१ सामग्री का सग्रह संकलन और उनका वैज्ञानिक वर्गीकरण

२ विस्तृत क्षेत्र विषयक—व्यापक अनुसंधान

अ युग का समस्त विषय विषयक

आ युग के किसी विषय-विशेष विषयक

इ युग की प्रवृत्ति-विशेष विषयक

ई युग की पृष्ठ भूमि विषयक।

३ संकुचित क्षेत्र विषयक

१ विशेष कवि

२ विशेष प्रवृत्ति

३ विशेष भाव

४ विशेष शब्द प्रयोग

इन प्रणालियों के साथ ये प्रणालियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं—

१ सग्रह संकलन वर्गीकरण प्रणाली

२ विश्लेषण प्रणाली

- ३ विचारानुसंधान प्रणाली
- ४ पुरिष्कारिक प्रणाली
- ५ विनामानसधाम प्रणाली
- ६ तुलनात्मक प्रणाली
- ७ व्यक्त्य और तरेक प्रणाली
- ८ व्याख्या विशेषण प्रणाली
- ९ मूल्यांकन प्रणाली

घीर प्रणालिया का विचारित कर कर रणा के अनुसार यह धनसंधान म प्रकृत
हो गकठा है ।

डॉ० रामकृष्ण गणेश हर्षे

अनुसंधान की तैयारी

१ व्याख्या--

प्रस्तुत प्रसंग में अनुसंधान शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। एक निश्चित उद्देश्य के साथ किसी विषय की बार-बार उस समय तक खोज करना जब तक कि एक नवीन विचार प्रणाली प्रस्तुत न की जा सके, जिसे तत्सम्बन्धित विषय में एक ठोस योगदान समझा जा सके।

२ सामान्य भूमिका--

सामान्यतः यह पहले ही कल्पना कर ली जाती है कि अनुसंधित्सु को कम से कम 'डबल ग्रेजुएट' होना चाहिए और अधिकांश विश्वविद्यालयों में तो बिना एम०ए० किए हुए किसी भी छात्र को स्नातकोत्तरीय अनुसंधान कार्य करने की अनुमति नहीं दी जाती है। अन्य सभी उपाधि परीक्षाओं की भाँति पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त करने के लिए भी बहुतेरे विद्यार्थी प्रयत्न करते हैं और यही कारण है कि आगरा विश्वविद्यालय प्रति वर्ष लगभग १०० पी-एच०डी० विद्यार्थियों को पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान करता है।

३ कुछ आवश्यक प्रतिबन्ध--

विश्वविद्यालयों द्वारा अनुसंधान कार्य पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए हैं जैसे विद्यार्थी ने अको का उच्च प्रतिशत प्राप्त किया हो जो द्वितीय श्रेणी से कम न हो। आगरा विश्वविद्यालय एम०ए० पाम करने के तुरन्त बाद ही नहीं, अपितु तीन वर्ष पूरा हो जाने के पश्चात् ही पी-एच०डी० के लिए नामकरण की अनुमति देता है। इसी प्रकार यह आशा की जाती है कि पी-एच०डी० का छात्र अपना शोध-प्रबन्ध 'रजिस्ट्रेशन' कराने के दो वर्ष बाद पूरा कर लेगा। बहुत से विश्वविद्यालयों में यह अवधि दो साल के लिए और भी बढ़ायी जा सकती है।

रहि—

परम्परानुसार ऐसा माना जाता है कि प्रका का उच्च प्रतिघत प्राप्त कर एम ए की परीक्षा उत्तीर्ण करने वाला कोई भी विद्यार्थी पाठ्य प्रबन्ध मितकर पी एच डी की उपाधि प्राप्त कर सकता है। इसी कारण छात्रावास पी-एच डी करने वालों की एक बाइ सी था गई है। तबिन यदि हम पी-एच डी विद्यार्थियों के काम का मूल्यांकन उनके इस सातव उपाधि का प्राप्त कर लेने के परभाव करें तो हम पावेंगे कि अधिकांश पी एच डी की उपाधि ही उनके लिए राव कुछ होती है और इस उपाधि को प्राप्त कर लेने के परभाव उनके अनुसंधान-जीवन की समाप्ति हो जाती है और उसके बाद उनके द्वारा कोई भी महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं दिया जाता।

२ अनुसंधान की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ—

एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चीज जो मुझा ही जाती है वह यह है कि अनुसंधान के लिए एक विशिष्ट प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है और अनुसंधान करने के लिए किसी विद्यार्थी का विश्वविद्यालय की परीक्षा की कबल विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण कर कर लेना ही पर्याप्त नहीं है। विस्तृत सामान्य ज्ञान अधीन भन करने की क्षमता सर्व षोष की जाने वाली क्षमताओं की पकड़ने की नैसर्गिक अन्तर्दृष्टि मूल्य चीजों की टिप्पणों लेने की बखता विरलेपन और पुननिर्माण की सक्रिय संयोजकता पाठ्य प्रबन्ध के अत्येक महत्त्वपूर्ण विद्या के लिए प्रामाणिकता का साधक, ये कुछ अनुसंधान कर्ता के प्राणस्यक गुण हैं। एक अनुसंधानित्सु का विस्तृत सामान्य ज्ञान उस विद्यार्थी के विशिष्ट ज्ञान से पूर्वतया मिस होता है, जो किसी परीक्षा की तैयारी कर रहा है। जो कुछ उसने किया है उसे केवल तीन बंटों के सीमित समय में प्रस्तुत कर देने तक ही उसकी कार्य-क्षमता सीमित नहीं होती है। अतिसु प्रब-मूची का बनाना टिप्पणियाँ लेना विभिन्न स्रोतों से सामग्री संकलन करना और फिर इसे हम प्रकार सूचीबद्ध और पुननिर्माणित करना जिससे कि एक नयी सृष्टि का निर्माण हो सके उसके लिए अपेक्षित है। वह तब तक संतोष पूर्वक बैठ नहीं सकता जब तक कि सभी विशिष्ट विषय और समाधान पर्याप्त रूप से प्रामाणिक सिद्ध नहीं कर दिए जाते और उनके लिए आवश्यक सामान्य प्रस्तुत नहीं कर दिए जाते। यह परीक्षा के संतोष से अधिक अनुसंधानित्सु के अपने नैसर्गिक विरासत का प्रश्न है। उसकी नैसर्गिक क्षमता और रचनात्मक कल्पना एक नैसर्गिक-अन्तर्दृष्टि और अन्तर्ज्ञान के द्वारा किसी प्राचीन विषय पर प्रकाश डालते हुए, जो प्रश्न-मार्ग के निबन्ध में अपेक्षित नहीं है। पूर्ण प्रस्तुतित होनी है। अनुसंधान में छोटी से छोटी और सूक्ष्म से सूक्ष्म चीजें बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती हैं जिनका पारयण कर एक नये मार्ग की पुन-स्थापना होती है। जहाँ परीक्षा में इन छोटी-छोटी बातों का कोई महत्त्व नहीं होता है जहाँ तो एक संतुलित सीमा में केवल सूक्ष्म-सूक्ष्म विषय रख दिए जाते हैं। अनुसंधानित्सु द्वारा संकलित की गई विस्तृत सामग्री की व्याख्या से शोध प्रबन्ध के अरीर का निर्माण होता है और एक सुसम्बद्ध एवं सुसंगठित कक्षापूर्ण प्रस्तुति उस अरीर को जीवन प्रदान करती है। किसी भी शोध प्रबन्ध का उस समय तक कोई नैसर्गिक मूल्य नहीं होता जब तक कि उसका आधार सत्य न हो और उस सत्य

के लिए स्थिर, सुदृढ़ प्रमाण से सदभ्रं उद्धृत किए गए हो। यह एक सर्वथा भिन्न कार्य प्रणाली है। इसमें खोज करने वाले व्यक्ति की खोज के लिए साहस और निराशा भी रहती है और साथ ही साथ एक नई खोज का आनन्द भी। लेकिन यदि दुर्भाग्य से उसका गलत निर्देशन होता है तो उसका सारा प्रयत्न मिट्टी में मिल जाता है। इसीलिए मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि तथाकथित शिक्षा-मस्याओं की उपाधि प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही आवश्यक रूप से एक सफल अनुसंधित्सु हो सकता है। एक सच्चे अनुसंधित्सु के बारे में मेरा यह विचार है कि चाहे उसके पास कोई उपाधि हो या न हो, चाहे वह किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो, वह सासारिक मफलता की चिन्ता किए बिना जीवन पर्यन्त अपना अनुसंधान कार्य जारी रखता है। अनुसंधान के प्रति उसकी भक्ति एक प्रकार का दैवी उन्माद होता है, जो उसके जीवन के साथ लगा रहता है और इसीमें उसके जीवन का यश, वैभव और आनन्द है यद्यपि वह अपने परिश्रान्त पथ को अकेला ही तय करता है।

मुझ ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण मालूम हैं, जिन्होंने कोई उपाधि न रहते हुए भी अनुसंधान की बहुत बड़ी सेवा की है। राव बहादुर सर देसाई केवल एक सामान्य श्रेणी के स्नातक हैं, लेकिन वह हमारे अग्रगण्य इतिहासज्ञों में से एक हैं। राव बहादुर डी० वी० पारसनीस शायद 'मैट्रीक्यूलेट' भी नहीं थे, लेकिन वे महाराष्ट्र के आदि अनुसंधाताओं में से हैं, जिन्होंने महाराष्ट्र के बाहर और भीतर भी ऐतिहासिक अनुसंधान में बहुत से राजाओं को प्रेरित और उत्सहित किया है। डॉ० सकलिया ने केवल एम० ए० में थीसिस के द्वारा प्रथम श्रेणी प्राप्त कर ली थी, अन्यथा 'यूनिवर्सिटी कैरियर' बहुत उज्ज्वल नहीं था, लेकिन आज वह भारत के अग्रगण्य पुरातात्विक हैं। और पारंपरिक अनुसंधान के लिए अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है। इस प्रकार इस क्षेत्र में उन्होंने अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त करने वालों में एक प्रकार की सुसम्बद्ध सूक्ष्मता आ जाती है लेकिन सस्थागत उच्चस्तरीय योग्यता को ही अनुसंधान के लिए आवश्यक समझकर उस पर असाधारण जोर देना अनुसंधान के लिए बहुत ही हानिकारक है। बिना किसी प्रतिबन्ध के विद्वत्ता का द्वार सब के लिए खुला रखना चाहिए और अनुसंधान की असाधारण उपलब्धियों के लिए अपेक्षित गुणों की मान्यता प्रत्येक व्यक्ति को मिलनी चाहिए। इसके साथ ही साथ यह भी भूलना नहीं चाहिए कि किसी दिए हुए विषय पर उपाधि प्राप्त करने के लिए शोध-प्रबन्ध के लिखने और अपनी नैसर्गिक प्रतिभा के साथ स्वत अनुसंधान-क्षेत्र में प्रविष्ट होने की प्रवृत्ति में मौलिक भेद है। यह एक प्रसन्नता की बात है कि विश्वविद्यालय अपने स्नातकोत्तरीय अनुसंधान क्षेत्र का तेजी के साथ विकास कर रहे हैं लेकिन केवल उपाधि प्रदान करना मात्र ही नहीं अपितु ठोस अनुसंधान कार्य उनका अभीष्ट होना चाहिए।

६ प्रारम्भिक प्रशिक्षण

हमारे देश में जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है उसके स्तर और आदर्श तथा अव्यापको और विद्यार्थियों द्वारा गृहीत शिक्षा और परीक्षा-प्रणाली को देखते हुए एक

धनुर्विद्य के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि वह अपनी जिज्ञा समाप्त करने के पश्चात् कुछ समय प्रशिक्षण में लगाए और जिस विषय में उसकी रुचि है जिस विषय पर वह अनुसंधान करना चाहता है उस विषय के ज्ञान को सामान्य अध्ययन द्वारा प्राप्त कराए। उसके लिए, विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने शोध प्रबन्ध में सूचित विधियों और प्रकाशनों से तथा अनुसंधान-साहित्य से पूर्वतया परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। क्षेत्र में अपने कवि कठामरुच में कवियों के प्रतिक्षण के लिए एक व्यावहारिक विधि की व्यवस्था की है। इसी प्रकार अनुसंधानार्थी के लिए भी एक प्रकार की सामान्य जिज्ञा प्रकाशी की व्यवस्था अपेक्षित है। आज के वैज्ञानिक युग में अल्प समीक्षकों की भाँति अनुसंधान भी एक यंत्रिक प्रक्रिया बन गया है। इसलिए अनुसंधान के सभी उपकरणों से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है।

७ पुस्तकालय

कथन विशेषज्ञों द्वारा सुसज्जित पुस्तकालय अनुसंधान की एक मूलभूत प्रावश्यकता है। पुस्तकालय भी कई प्रकार के होते हैं लेकिन अनुसंधान के लिए तो अनुसंधान प्रणालय ही उपयोगी होते हैं। इस प्रकार के सुसज्जित पुस्तकालयों के बिना अनुसंधान की ऊँची ऊँची बातें करना विस्तृत संसार है। यूरोप और अमेरिका के संशोधार्थी की भाँति भारतीय संशोधार्थी के पुस्तकालयों की पचना साँझों में न होकर केवल हमारों में ही होती है और इसके साथ ही साथ हमारे देश में जहाँ तक पुस्तकालयों की व्यवस्था का प्रश्न है वह अभी तक अपने प्रारंभिक अवस्था में ही है। हमारे बुर्जुआ लोग धन भी यह अनुभव करते हैं कि कर्मों और व्ययधियों के द्वारा पुस्तकालय बनाया जा सकता है। वे वर्तमान ज्ञान के प्रशिक्षित कुशल पुस्तकालयों के विभिन्न कार्यों और उनकी प्रभुत्व सेवा से अभी पूर्वतया अनभिज्ञ हैं और जब तक इस प्रकार की कार्य प्रणाली में सुधार नहीं किया जाता विद्वानों के ज्ञान साँझ में किसी भी प्रकार के योगदान दिए जाने की आशा दुर्लभा मात्र है। इसी कारण सभी धार भारतीय विद्वानों की व्यवहेलना हुआ करती है। लेकिन धन भी हमारे विद्वानों के लिए और कामों सभी प्रकार के ज्ञान के मूल स्रोत और अनुसंधान का जीवन प्रदान करने ज्ञान तत्व की उपयोग कर केवल हमारता पर ही ध्यान मूँद कर दिए खर्च कर रहे हैं।

८ पुस्तक-प्रेम

एक धनुर्विद्य के लिए यह अपेक्षित है कि ज्ञान से ज्ञान वह पुस्तक प्रेमी धारण हो। तत्पश्चात् ज्ञान विषय की पुस्तकें नहीं उपलब्ध हो सकती हैं हमारा उसे पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उसे बंध-मुक्ति पुस्तक-विवरण के विस्तृत साहित्य और पत्रिका-पूर्व पुस्तकालय के धन में ही हुई बंध-मुक्ति का भी ज्ञान जाना चाहिए। पुस्तकालय की पुस्तकों का ज्ञान परिषद भी बहुत उपयोगी होता है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त यूरोप और अमेरिका में ज्ञान भी विस्तृत ज्ञान विज्ञानों और भारत में भी ज्ञान सामान्य पत्रिकाओं निम्नलिखित हैं जिनमें ज्ञानों के बारे में अद्यतन ज्ञान प्रकाशित होते रहते हैं। हमारे देश के ज्ञानों में ज्ञानों के धन के लिए बंध-मुक्ति को एक अपरिहार्य आवश्यकता के रूप में अनुभव किया है। सभी ज्ञानों में भारतीय ज्ञानों की पूरा वैज्ञानिक और पूर्ण

सूची पूना से प्रकाशित हुई है। जहाँ तक भारतीय भाषाओं का सम्बन्ध है सुपर-रायल आकार के १२०० पृष्ठों की, मराठी साहित्य की वर्गीकृत ग्रंथ-सूची भारत में अपने ढंग का सबसे पहला प्रयास है। यह अकेले एक व्यक्ति के अथक परिश्रम का परिणाम है जिसने लगातार १० वर्ष तक बिना किसी सहायता के काम किया। 'यूनेस्को' ने विविध-विषयों के आन्तरराष्ट्रीय पुस्तक सूची के प्रकाशन का काम अपने हाथ में लिया है। गैर सरकारी तौर पर भी इंग्लैंड, फ्रान्स और जर्मनी आदि देशों में कुछ ऐसी विशिष्ट सस्थाएँ हैं जो पत्रिका के रूप में विविध प्रकार की पुस्तक-सूची को प्रकाशित करती हैं। कुछ प्रसिद्ध प्रकाशकों के वर्गीकृत ग्रंथ-सूची से भी लाभ उठाया जा सकता है। यूरोप के प्रकाशकों ने मिलजुलकर सार्वजनिक उपयोग और विज्ञापन के लिए अपनी सभी प्रकाशित पुस्तकों का एक सदर्भ ग्रंथालय (Reference library) स्थापित किया है। भिन्न-भिन्न पुस्तकालयों की छपी हुई पुस्तक सूची भी, सूचनाओं का एक मुख्य स्रोत है।

६. शब्द कोषों का उपयोग

विद्यार्थियों को शब्द कोष का उपयोग बताया जाना चाहिए। मैं ऐसे स्नातकोत्तरीय विद्यार्थियों को जानता हूँ जिन्होंने अपने जीवन में कभी एक साधारण कोष को भी नहीं देखा है और न तो वे यही जानते हैं कि कोष में वर्णमाला के क्रमानुसार शब्द रखे जाते हैं। यह सब 'नोट्स' और 'गाइड्स' (टिप्पणी-पुस्तक और प्रदर्शिकाओं) का ही परिणाम है। अंग्रेजी में 'इनसाइक्लोपीडिया' से लेकर डिक्शनरी आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स (Dictionary of Religion and Ethics) और डिक्शनरी आफ नेशनल बायोग्राफिज (Dictionary of National Biographies) जिनमें विद्वानों द्वारा हर तरह के विषय पर उच्चस्तरीय लेख लिखे गए हैं, ऐसे सभी प्रकार के विशिष्ट कोष प्राप्त हैं। इन सब साधनों के द्वारा नयी से नयी सूचना प्राप्त की जा सकती है। 'गजेटियर' 'ईयर बुक' और सभी तरह के 'सर्वे रिपोर्टों' से भी अनुसंधान के सैकड़ों विषय लिए जा सकते हैं।

१० विद्या की दुनियाँ (The World of Learning)

इन सब स्थानीय सहायक उपकरणों के अतिरिक्त आज सारे ससार में अपने विषय के विद्वानों द्वारा व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना भी सम्भव हो गया है, जो हमारे लिए बहुत उपयोगी है। इस प्रकार का सम्पर्क 'यूनेस्को' जैसी किसी सस्था के माध्यम से स्थापित नहीं किया जाता है अपितु 'दि वर्ल्ड ऑफ लर्निंग' (The world of Learning) नाम निर्देशक-ग्रंथ की सहायता से, जिसके द्वारा ससार भर के विद्वानों तथा साथ ही साथ विश्वविद्यालय, कालेज तथा इसी प्रकार के विविध सस्थाओं में कार्य करने वाले अध्यापकों के विषय की भी सूचना हमें मिलती है। इसका प्रकाशन प्रतिवर्ष होता है और इसमें बहुत ही नवीनतम सूचनाएँ दी जाती हैं। इस प्रकार के भौतिक सहायक उपकरणों को अनुसंधान करने वाले विद्यार्थियों की पहुँच में रहना सर्वथा अपेक्षित है।

११ व्यक्तिगत पुस्तकालय —

यूरोप में प्रत्येक उच्च कोटि के विद्वान के पास अपना एक व्यक्तिगत ग्रंथालय रहता है। जिसे वह अपनी प्राथमिक धर्मिता के अनुसार अपने निर्वाचित विषय के क्षेत्र में तबीनतम रखने का प्रयत्न करता है। संसार के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान प्रो० लुई रेनू (Prof Louis Renou) का विद्यालय प्रथममन-कृष्ण विद्यालय से सजी हुई है। फौट तक ऊँची रोस्को से घिरा हुआ है। प्रो० जूल ब्लोक (Prof Jules Bloch) के घर में उनके प्रथमपत्र कला तक पहुँचने के पहले हमें कितायों कि बीच से होकर जाना पड़ता था। इन विद्वानों का पुस्तकालय के प्रति यह माह पूर्णतया स्वाभाविक है। लेकिन हमें समी इस तरह की धारणा का विकास करना है। यह केवल सपने जैसे का ही प्रयत्न नहीं है। यूरोप में भी प्रायः देशों की भाँति विश्वविद्यालय के प्रथमापक वेतन कम पाते हैं लेकिन उनके पुस्तकालय का सुदृढ प्रेम साक-प्रसिद्ध है। और यही उनकी एकमात्र सम्पत्ति है। हमारे कला प्रथमापक पुस्तकालय पर एक पार्स भी खर्च नहीं करते हैं और अपने मुख्य कार्य की ज़ेला कर अपने को धार्मिकता कार्यों में समाए रखते हैं। नही कारण है कि भारत में विश्वविद्यालय के प्रथमापकों द्वारा जो कुछ भी योगदान हुआ है वह बहुत ही पुत्र्य और सारहीन है, जो यूरोपीय विद्वानों के लिए समीरता और चिन्तन का विषय विस्मय ही नहीं है। यदि इस स्थिति को बदल कर एक स्वस्थ परम्परा का प्रतिष्ठापन किया जाय तो हमारे प्रथमापक और विद्यार्थी दोनों ही उच्चस्तरीय तथा जन हुए व्यक्तिगत ग्रंथालयों का विकास कर सकेंगे। जनसभान के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चीज विद्यार्थी की जोर है और उसमें थोड़ा सा भी विलम्ब प्रचलनीय हो जाता है। इसके साथ ही साथ विषय को प्राथमिक जगत के लिए तत्कालीन प्रसंग निर्देशक अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण उपसम्पत्ति है जिसके बिना अनुसंधान निर्जीव सा हो जाता है। इसलिए ऐसे धर्मसरो पर व्यक्तिगत पुस्तकालय एक बरदान सिद्ध होते हैं।

१२ विषय का निर्वाचन और निर्देशक —

जब तक कि विद्यार्थी को अपने विषय की प्रच्छी जानकारी नहीं है और जोर जोर करण के लिए अपनी समस्याएँ नहीं हैं जो कि बहुधा कम ही होता है विद्यार्थी को प्रथमापक व द्वारा विचित मार्ग प्रदर्शन की आवश्यकता पड़ती है जिसके माध्यम वह अपने साथ प्रत्येक के विषय निर्वाचन के अनुसूच्य कार्य करता जाहता है। जब एक स्नातकोत्तरीय अनुसंधान संस्था ध्यान विभागीय कार्य की योजना बनाती है और समस्याओं की नवी जोर में प्रवृत्त होना चाहती है तब प्रथमापकों के समसाभाव के कारण इन जोरों में धनमपिलगुमा को समा देन से यह समस्या कुछ सरल हो जाती है। किसी विषय-विशेष में विद्यार्थी का मान-सर्जन करण के लिए निर्देशक को उस विषय का सामान्य ज्ञान होना धन आवश्यक है। और उसे अनुसंधान को धाने बढ़ाने के हेतु उन समस्याओं पर विविष्ट धन्यवन करने के लिए प्रथमापक तैयार रहना चाहिए जिसे विद्यार्थी समय समय पर उससे मिलकर उसके सामन रगता है। जोर प्रकल्प का उत्तरदायित्व जिस प्रकार विद्यार्थी पर होता है उन्ही प्रकार उन्हीं निर्देशक पर भी हाता है। यदि कोई विद्यार्थी अपने निर्देशक

के निर्देशानुसार नहीं चलता है, तो यह दूसरी बात है लेकिन यदि वह ऐसा करता है तो उसका निर्देशन, मार्ग-दर्शन उसके अभीष्ट उद्देश्य तक होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि निर्देशक अपने इस उत्तरदायित्व को ममत्त लेते हैं तब किसी प्राध्यापक को एक समय ७ या ६ से अधिक विद्यार्थियों का निर्देशन स्वीकृत करना मभव नहीं होगा।

मुझे ऐसे प्राध्यापकों के उदाहरण मालूम हैं, जो विषय के उपयुक्त ज्ञान के अभाव में विद्यार्थी का गलत पथ प्रदर्शन करते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनमें से कुछ के जीवन का बहुमूल्य २-३ वर्ष का समय बरबाद हो जाता है। उदाहरण स्वरूप एक विद्यार्थी को हिन्दूधर्म की सन्कार विधियों का विकास (Development of Hindu Sacraments) विषय अनुमधान के लिए दिया गया लेकिन जैसा कि धार्मिक विधियाँ अपने पूर्ण विकसित रूप में परम्परानुसार गृह्य-सूत्र में हमारे पास तक आई हैं, गृह्य-सूत्र के पूर्ववर्ती साहित्य में इस विषय के लिए कोई भी सामग्री प्राप्त न हो सकी। तब उसे महाभारत से सामग्री सकलन करने के लिए कहा गया। वह बेचारा श्रद्धारहो पर्व छान गया लेकिन कुछ भी हाथ नहीं लगा। तब उसे अपनी धार्मिक विधियों की तुलना पारसी विधियों से करने और वहाँ विकास के सूत्र को ढूँढने के लिए कहा गया। वहाँ फिर उसे निराश होना पड़ा। और फिर अन्त में एक शब्द भी शिफायत किए बिना उसे पी-एच० डी० की उपाधि लेने के विचार को छोड़ देना पड़ा।

एक दूसरे विद्यार्थी को स्थानों के नाम का अध्ययन (The Study of Place-names) नामक विषय अनुमधान करने के लिए एक प्राध्यापक द्वारा दिया गया और उसमें लगभग ५००० स्थानों के नाम संग्रह करने को कहा गया। उसने इस काम को एक वर्ष के अन्दर पूरा कर लिया और फिर उस प्राध्यापक के पास आगे के निर्देशन के लिए गया। लेकिन उसको अनुमधान की उपयुक्त प्रणाली और अभीष्ट ज्ञान देने के बजाय उस प्राध्यापक ने उसे ५००० और नामों का संग्रह करने के लिए कहा। उसने तत्परता के साथ दूसरे साल काम किया और ५००० नामों के स्थान पर ७००० नामों का संग्रह कर लिया, इस आशा से कि वह शीघ्र ही अपना अनुसंधान कार्य समाप्त कर लेगा। सब मिलाकर उसने १२००० नामों का संग्रह किया, जो कि एक बहुत बड़ा कार्य था, लेकिन उसके शोध-प्रबन्ध को तैयार करवाने के लिए प्राध्यापक के मस्तिष्क में कोई भी स्पष्ट रूपरेखा नहीं थी। इसलिए और अधिक समय लेने के लिए उससे २०००० नामों की सख्या पूरा करने के लिए कहा गया। इस पर बहुत ही उद्विग्नता के साथ विद्यार्थी ने एक पत्र भेज कर उस प्राध्यापक की भर्त्सना की और इस कटु अनुभव के साथ उसे अपना सभी अनुसंधान कार्य समाप्त करना पड़ा।

१३ निर्देशक का उत्तरदायित्व —

इन उदाहरणों के देने का मुख्य प्रयोजन यह है कि निर्देशक को अपने उत्तरदायित्व से पूर्णरूपेण सचेत रहना चाहिए और उसे अन्त तक उस अनुसंधान कार्य की प्रगति का निरीक्षण करते रहने के लिए इच्छुक रहना चाहिए जिसे उसने अनुसंधित्तु के लिए निर्धारित किया है। उसे अच्छी तरह मुव्यवस्थित रूप में शोध-प्रबन्ध की रूप

रेखा विद्यार्थी के सम्मुख प्रस्तुत करनी चाहिए और स्वयं समय-समय पर दिए गए निर्देशनों का एक सेना भी उसके अपने पास रखना चाहिए ।

१४ रूपरेखा और सक्षिप्त विवरण—

यहाँ पर मुझे बिस्वविद्यालयों द्वारा सोच प्रबन्ध के विषय की स्वीकृति कराने के लिए, अनुसंधान के आरम्भ में ही विद्यार्थियों द्वारा दिए जानी वाली रूपरेखा की प्रथम प्रस्तावना की याद दानी है । जैसा कि निर्देशक एकेडेमिक-कठिनता का सदस्य होता है, (यह नहीं होता है या होना चाहिए) और जो विषय वह अनुसंधान को देता है उस विषय का ज्ञाता होम के कारण अनुसंधान काम की स्वीकृति के हेतु उसके अभिमत और प्रस्ताव को पर्याप्त समझकर प्रीपारिण्ड रूप से उसे मामूली प्रदान कर देनी चाहिए । यह उसका कर्तव्य है कि वह अनुसंधान द्वारा किए जाने वाले अनुसंधान के क्षेत्र की व्याख्या करे । इस प्रकार उसे अनुसंधान का पूर्ण उत्तर दायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए और यदि उसके किसी विषय के पर-समर्पण के परभाव उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया जाता है तो यह उसके ध्यान और निर्देशन दक्षिण का प्रभाव समझना चाहिए । इस प्रकार के उत्तरदायित्व-पूर्ण अनुसंधान का ही परिणाम फलप्रद होता ।

यदि विद्यार्थी अपने अनुसंधान का परिणाम पहले से ही जानता हो तो फिर अनुसंधान करने की दिक्कत ही आवश्यकता नहीं । दूसरे प्रश्नों में यह प्रथा है कि सोच प्रबन्ध के प्रस्तुत करने के एक महीना पहले या अधिक से अधिक तीन महीना पहले उस विषय की रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है जिसका अभिप्राय यह होता है कि वह सोच-प्रबन्ध पूर्णतया तैयार हो गया है और एक निश्चित समय के धन्दर उसे प्रस्तुत किया जा सकेगा ।

१५ अनुसंधान के प्रकार—

बिना विषयो पर स्नातकोत्तरात्म अनुसंधान कार्य होता है । उनके भिन्न-भिन्न बर्ण हो सकते हैं—

(अ) एक नये क्षेत्र का उद्घाटन—

इसमें किसी एक ऐसे विषय पर अनुसंधान किया जाता है जिस पर पहले कोई काम नहीं हुआ हो । यहाँ प्रश्नविधियों से उपयुक्त निर्देशन न मिलने के कारण कार्य में उसे कठिनाइयाँ आती हैं, जिसका समाधान विद्यार्थी और निर्देशक दोनों की कल्पना शक्ति पर प्रहार करता है । यदि अनुसंधान-कार्य वैज्ञानिक प्राकारों पर होता है तो यही उस कार्य का एक मात्र महत्त्व है ।

(ब) सुन्दर-पत्र—

एक जाने-मुने विषय पर सोच प्रबन्ध सिखाना और भी कठिन है जबकि प्रत्येक व्यक्ति इसके बारे में कुछ न कुछ जानता है । जब तक आप किसी नये तथ्य की खोज न करें सफलता की प्राप्ति रहना व्यर्थ है । उसका अंतिम प्राकार, उपलब्ध

सामग्री को समाधानकारक प्रमाणों से पुष्ट और पुनर्नियोजित कर उसे नये प्रकाश में प्रस्तुत करना है ।

(स) व्यापक विचार—

इस प्रकार के अनुसंधान का एक आदर्शभूत उदाहरण प्रो०जूल ब्लॉक (Prof Jules Bloch) का शोध-प्रबन्ध 'लैंडो आर्या' ('L' Indo Aryan') है जिसमें उन्होंने 'रायल आफ्टेवो' आकार के ३३५ पृष्ठों में लगभग २५०० वर्ष के आर्य भारतीय भाषाओं के इतिहास और विकास का निरूपण किया है । इसका प्रत्येक पृष्ठ पूर्ण रूप से विवेचित दृष्टान्तों और ठोस शैली से गुँथा हुआ है जो लेखक के असीम कष्ट महिष्णुता का परिचय देता है । काल-खण्ड के लम्बे होने पर भी उन्होंने अपने विषय के यथार्थ स्वरूप को बहुत ही सफलता के साथ थोड़े में ही प्रस्तुत किया है ।

(द) सूक्ष्म अध्ययन—

इसके अन्तर्गत किसी विषय के सभी पहलुओं का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है । इसके सम्बन्ध में पेरिस विश्वविद्यालय के डॉ० जॉ फिल्योज़ा (Dr Jean Filhozat) की दो कृतियों का उदाहरण देना चाहूँगा । रावण का कुमारतंत्र (Kumāra Tantra of Rāvana) एक छोटा सा निबन्ध है जिसमें केवल १२ पद्य हैं । लेकिन इसके लिए उन्होंने पूरे एशिया महाद्वीप में प्राप्त उसके तुलनात्मक पाठों का अध्ययन किया है और 'क्राउन साइज' के १६२ पृष्ठों को आपने गहन अध्ययन में लगाया है । उनकी दूसरी कृति में इस बात का विवेचन किया गया है कि हिन्दू परम्परागत धारणाओं के अनुसार श्रायुर्वेद को किस प्रकार वेदों का उपवेद कहा जा सकता है । उन्होंने अपने इस ग्रंथ में वैदिक और वैदिकोत्तर पाठों का तुलनात्मक अध्ययन कर अपने इस विचार को रायल आफ्टेवो आकार के २२७ पृष्ठों में पूर्ण विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है जिसका शीर्षक 'ला' दौक्त्रिन् क्लासिक् द ला मेद्सीन अँदीयन् ("La Doctrine classique de la Médecine Indienne") ।

(य) साहित्यिक अनुसंधान—

अनुसंधान का एक और प्रकार भी होता है जिसे विशुद्ध साहित्यिक कह सकते हैं । यह मुख्य रूप से प्रकाशित ग्रंथों पर आधारित होता है । इसमें दूसरे के द्वारा किसी विषय पर कही गई बातों का पुनरावलोकन करते हैं और शोध-प्रबन्ध में प्रस्तावित विचार धारा को प्रामाणिक सिद्ध किया जाता है । साहित्यिक आलोचना के सभी शोध-प्रबन्धों को इस वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है ।

१६ अनुसंधान की विधि—

अनुसंधान किसी भी प्रकार का क्यों न हो उसकी विधि एक ही होती है । एक निश्चित दृष्टिकोण, व्यवस्थित कार्य-प्रणाली, तर्क सगत विवेचन और प्रतिपाद्य विषय की प्रामाणिकता, यही अनुसंधान के मूल तत्त्व हैं । अनुसंधान की मूलभूत समस्या आपके विशिष्ट विचारों की नहीं अपितु उस विचार को प्रामाणिक और सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने की है । यह याद रखना चाहिए कि साहित्यिक आलोच-

नामों के विषय में कोई एक अन्तिम मन प्रतिष्ठापित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के विद्यार्थियों का अनुसंधान की दृष्टि से कम महत्व रखता है। यदि आपके विचार से सोच प्रबन्ध के परीक्षक के विचार नहीं मिलते हैं वा आपके ग्रहित हो जाने का डर बना रहता है और आपके अपने प्रमाण में असफल न होने पर भी उसके लिए अपेक्षित सम्मान नहीं मिलता है।

१७ विषय—

सोच-प्रबन्ध के विषयों का विविध वर्गीकरण किया जा सकता है। साहित्य सम्बन्धी विषय निम्न प्रकार के हो सकते हैं।

- १ भाषा बौद्धान्तिक।
- २ ऐतिहासिक अध्ययन।
- ३ टर्निकल और बौद्धान्तिक अध्ययन।
- ४ साहित्यिक प्रामोक्षणा।
- ५ तुलनात्मक अध्ययन।
- ६ अप्रकाशित ग्रंथों का आलोचनात्मक प्रकाशन और
- ७ क्षेत्रीय सामग्री संकलन उसका प्रकाशन प्रतिवेदन और अध्ययन आदि।

१८ अनुसंधान की सविधार्थ—

(१) विद्यापीठ का पुस्तकालय—

यह बहुत संतोष की बात है कि हमारे विद्यापीठ के पुस्तकालय में १ पुस्तकों का संग्रह है। यह भी धापा की जाती है कि जैसे ही पुस्तक-सूची तैयार हो जायगी जिससे विद्यार्थियों को अपासंभव हर तरह की सुविधा हो जायगी। लेकिन यह स्मरण रखना चाहिए कि अनुसंधान के लिए संदर्भ संवालय (Reference Library) होने के कारण विद्यापीठ के बाहर इसकी किसी भी पुस्तक को ले जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। विद्यार्थियों के लिए एक बुलेट्टे हुए अध्ययन-कृत की व्यवस्था करने का भी विचार हम कर रहे हैं जिसको सीधे ही विद्यार्थित किया जायगा।

(२) विश्वविद्यालय का प्रयागर—

विद्यापीठ के पुस्तकालय के अतिरिक्त यहाँ के विद्यार्थी विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का भी उसके नियमानुसार लाभ उठा सकते हैं। स्नातकोत्तरीय अनुसंधान कार्य के लिए यहाँ पर विशेष प्रकार के अध्ययन-कक्षों की व्यवस्था है, जिनमें नियमित कार्य करने वाले विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित किया जा सकता है। विश्वविद्यालय का पुस्तकालय विद्यार्थियों के लिए डाक और रेल सर्वे देने पर उनके लिए बाहर के दूसरे पुस्तकालयों से भी पुस्तक भेजाने की व्यवस्था कर सकता है।

(३) सस्यागत ग्रंथ उधार लेने की सुविधाएँ—

जैसे ही हमारे विद्यापीठ का प्रथालय मुव्यवस्थित हो जाएगा, वह बाहर से भी पुस्तकों के उधार लेने की सुविधा प्रदान कर सकेगा। पुस्तकों के उधार लेने की यह पद्धति डेक्कन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इस्टीट्यूट (Deccan College Postgraduate & Research Institute) में बहुत सफलीभूत हुई है और पूना में भी अन्तर्सस्यागत उधार लेने की पद्धति विकसित हो गई है। यदि हमारे पास बहुमूल्य और दुर्लभ पुस्तकों का संग्रह हो जाय और यदि हम बाहर के लोगों को भी पुस्तकें प्रदान करने की स्थिति में आ जायें तो यह उधार लेने की व्यवस्था यहाँ भी विकसित की जा सकती है।

(४) फोटो स्टार्ट कापी

माइक्रोफिल्म और फोटो स्टार्ट के साधन विद्यापीठ में पहले से ही विद्यमान हैं। एक 'माइक्रोफिल्म रीडर' भी है और अनुसंधित्सुओं के लिए 'प्रिंट्स' भी सुलभ किये जा सकते हैं। इस तरह की सुविधाएँ प्रत्येक सस्या और प्रमुख ग्रंथागारों में प्रदान की जाती हैं। हस्तलिखित ग्रंथों और अति दुर्लभ पुस्तकों के सम्बन्ध में विदेशों से सस्ते दर पर माइक्रोफिल्म या फोटो स्टार्ट प्रिंट करवाना भी आज संभव हो गया है। यदि हम ऐसी ही बाह्य सस्याओं से पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने में सफल हो सकें तो ससार में कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं होगी, जिसके अभाव में हमारा अनुसंधान कार्य रुकता हो, हम विद्यापीठ में मगाने न सकें। ऑफ्रेक्ट (Aufrecht) की ३ विभागों में पूरी ग्रंथ सूची, जो कि बहुत ही उपयोगी और दुर्लभ है तथा भारतीय दर्शन में किसी भी प्रकार के कार्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है, उसका माइक्रो फिल्म और प्रिंट डेकन कॉलेज के सदरम प्रथालय विभाग में उपलब्ध है। लेकिन इस प्रकार के कार्य कम ही होते हैं और तभी होते हैं जब उसके लिए अन्य कोई साधन संभव नहीं होता।

(५) 'टेपरेकॉर्डर'

भाषाविज्ञान और लोक साहित्य के अध्ययन के लिए विद्यापीठ में 'टेपरेकॉर्डर' मशीन भी है जिसका उपयोग आजकल अनुसंधान कार्य के लिए बहुतायत के साथ किया जा रहा है। और जिसने अनुसंधान के एक नये क्षेत्र का द्वार खोल दिया है।

(६) शोध-सस्याओं की सदस्यता

भै इस समय प्रत्येक अनुसंधित्सु को विविध प्रकार के अनुसंधान सस्याओं के सदस्य होने की सलाह दूँगा क्योंकि वे अपने सदस्यों को सभी प्रकार की अनुसंधान-सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करती हैं। सबसे पहले तो किसी शोध-सस्या का सदस्य होना ही गौरव की बात है। आप उनसे पुस्तकें उधार ले सकते हैं, कम मूल्य पर उनकी प्रकाशित पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं। प्रायः वे अपने सदस्यों को निःशुल्क पत्रिकाएँ देती हैं और उनके द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं की अपेक्षा उनका सदस्यता शुल्क भी कोई अधिक नहीं है। इस प्रकार आप स्वयं अपने नाम से पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं, उनके विश्वासपात्र बन सकते हैं और यदि आपको उनके वार्षिक सत्र और सभाओं में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हो तो आप देश के उच्चकोटि के अनुसंधानियों के साथ सम्पर्क भी स्थापित कर सकते

है। इस प्रकार की उष्णकोटि की संस्थाओं के सदस्यता व्यय को धन उपाधि प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले व्यय का ही एक प्रसंग समझना चाहिए और प्रत्येकगणना जो प्राप्त इससे लाभ उठाते हैं वह प्राप्त करने से कई गुना अधिक हाता है।

(७) अनुसंधान-छात्रवृत्ति

बहुत सी संस्थाएँ अपने विद्यार्थियों को अनुसंधान के लिए छात्रवृत्ति प्रदान करती हैं। लेकिन इन छात्रवृत्तियाँ क प्रतिरिक्त प्रांतीय और केन्द्रीय सरकार से भी कुछ छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं। ये छात्रवृत्तियाँ बहुत उपयोगी होती हैं इसलिए हमारे विद्यापीठ के छात्रों को इस प्रकार की छात्रवृत्तियों को प्राप्त करने की सुविधा हाथ से जाने देना नहीं चाहिए।

(८) छात्र-समूह

यूरोप में विद्यार्थियों के लिए बहुत सी सुविधाएँ विद्यमान हैं। प्रत्येक देश में छात्र समूह होते हैं जो समय समय पर विद्यार्थियों को प्राप्त होने वाली सुविधाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करते रहते हैं। यह सुविधाएँ कई प्रकार की होती हैं। विद्यार्थियों को सुविधा भोजन की सुविधा व्यक्तिगत प्रशिक्षण की व्यवस्था सायकिलों की सुविधाएँ वीथी वगैरे में प्रत्यय की व्यवस्था विविध काल तक चलने वाले प्रत्यासक्त छात्रवृत्ति और यात्रा व्यय प्राप्ति की सुविधाएँ में प्रदान करते हैं। हमें इस तरह की संस्थाओं का धनी विकास करना है लेकिन यदि इस तरह की संस्थाएँ नहीं हों तो अनुसंधानियों को उनसे पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए।

(९) विदेशी छात्रवृत्तियाँ

विदेशों में चलने के कार्यक्रम के प्रतिरिक्त वहाँ के प्रतिस्थाप का अपना प्रसंग महत्व होता है। बहुत से देशों में अनुसंधान करने वाले छात्रों को छात्र-वृत्ति प्रदान की है। विदेश में और हमारे देश में भी ऐसी बहुत सी परोपकारी संस्थाएँ हैं जो महत्वाकांक्षी विद्यार्थियों को सहायता कर सकती हैं।

(१०) सूचना-केन्द्र

यह बहुत आवश्यक है कि प्रायः विश्वविद्यालय एक सूचना केन्द्र होने चाहिए पर प्रांतीय और केन्द्रीय सरकार की छात्रवृत्ति कमिशनरों तथा अन्य देशों की छात्रवृत्तियाँ विद्यार्थियों के लिए होने वाले विभिन्न प्रकार के प्रत्यय की व्यवस्था यात्रा व्यय तथा इसी प्रकार की अन्य सभी सूचनाएँ मिल सकें।

(११) यात्रा-व्यय

अनुसंधान को एक विकास का काम समझना चाहिए जिससे कुछ जोड़े से लाभ ही लाभ उठा सकते हैं। लेकिन यह कहना कि जो लाभ प्राप्ति के दृष्टि से समूह है केवल नहीं अनुसंधान कार्य में प्रयुक्त हो इसमें कोई शर्ष नहीं है। यात्रा व्यय प्रायः निर्बल और प्रतिमासम्पन्न विद्यार्थियों को ही दिया जाता है जिसे वे इस प्रकार के व्ययहीन और धार्मिक काम में लगा सकें। इस प्रकार केवल योग्य छात्रों को ही अपनी सामग्री-संरक्षण के हेतु यात्रा-व्यय दिया जाना आवश्यक है।

१६ विषय का निर्वाचन और उसके पश्चात्

जब विषय का निर्वाचन हो जाता है तब सबसे पहले उस विषय के लिए ग्रन्थ-सूची और आलेख तैयार करना आवश्यक है। पुस्तक-सूची तैयार करते समय, पुस्तक का शीर्षक, उसके लेखक का नाम, प्रकाशक का नाम और पता, प्रकाशन तिथि, संस्करण और शोध-प्रबन्ध में प्रयोग किये जाने वाले अशो की सावधानी के साथ टिप्पणी ले लेनी चाहिए। आपको अपने शोध-प्रबन्ध में पुस्तक सूची देने की जरूरत पड़ती है और इसको प्रबन्ध का अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य परिशिष्ट समझा जाता है। बहुत से विद्यार्थी उन पुस्तकों का नाम देकर अपनी पुस्तक-सूची का आकार बढ़ा देते हैं जिन्हें वे कभी देख या पढ़ भी नहीं पाते हैं। मुझे एक ऐसे विद्यार्थी का उदाहरण मालूम है जिसका शोध-प्रबन्ध गलत पुस्तक-सूची देने के ही कारण अस्वीकृत कर दिया गया। इसलिए आरम्भ से ही पुस्तक-सूची को ठीक-ठीक बनाने की सावधानी रखनी चाहिये।

२० टिप्पणी लेने की पद्धति

मैं अपनी ओर से विद्यार्थियों को यह सुझाव देता हूँ कि पढी हुई पुस्तकों से टिप्पणी लेने के लिए चिटों का प्रयोग करें। प्रत्येक छोटे-छोटे विषय के लिए अलग-अलग चिट होनी चाहिए और टिप्पणी लेते समय सावधानी के साथ पुस्तक का सक्षिप्त शीर्षक और पृष्ठ संख्या लिख लेना चाहिए। प्रत्येक चिट पर विषयगत शीर्षक लिखना चाहिए। किसी एक विशेष पुस्तक के अध्ययन को समाप्त कर लेने के पश्चात् वर्णमाला के क्रम से इन चिटों को व्यवस्थित कर देना चाहिए जिसके बाद में उनका प्रसंग सरलता पूर्वक ढूँढा जा सके। यदि प्रत्येक शीर्षक में एक से अधिक चिटें हो जाती हैं तो उनको एक साथ मिलाकर और उनके दोनों ओर गत्ते के टुकड़े लगाकर सुरक्षापूर्वक बाँध कर रख लेना चाहिए। उनके सिरो पर पुस्तक का नाम भी लिख देना चाहिए। खुले कागजों पर टिप्पणी लेने की प्राचीन-प्रणाली बहुत बेतुकी है और इसमें बार-बार पढ़े प्रसंगों के ढूँढने से समय की बर्बादी होती है। चिट की प्रणाली अपनाकर जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते हैं आप का शोध-प्रबन्ध तैयार होता जाता है। और विषयगत शीर्षक के अन्तर्गत आपको बहुत से उपकरण विषय पर लिखने के लिए मिल जाते हैं। इसके बाद आप को उस चिट की सामग्री को विधिवत क्रमानुसार व्यवस्थित करना और फिर उनको अध्ययन कर विषय के क्रम से शोध-प्रबन्ध लिखना ही शेष रह जाता है।

२१ व्यक्तिगत परिश्रम का महत्त्व

बहुत से उच्चकोटि के विद्वान अपने अनुसंधान के लिए नकल करने का काम और इसी प्रकार के अन्य क्लर्कों के काम को अपमानजनक समझते हैं। वे दूसरों को सामग्री-सकलन के लिए इस काम में लगाते हैं और तब फिर शोध-प्रबन्ध लिखते हैं। लेकिन काम में लगे हुए व्यक्ति के विश्वसनीय और प्रामाणिक होते हुए भी ऐसे कामों में प्रतिपाद्य विषय में सुसम्बद्ध एकरूपता का अभाव रहता है। उनमें एक प्रकार की कृत्रिमता आ जाती है और उनकी आत्मा लुप्त हो जाती है। काम को अपने आप करने से हमें अपने विषय के आधार का पूर्ण विश्वास रहता है। जो कुछ हमने छोड़ दिया है

या बहुत क्रिया है उसका हमें ज्ञान रहता है और उससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जब नकल करने का काम यथवत् होता रहता है तो उस समय हमारे मस्तिष्क में अनजान रूप से बहुत से बिचार उठते रहते हैं जो बहुत ही मुख्यवान होते हैं। म कुछ और प्राये बढकर यह कहना चाहूंगा कि इन बिचारों को भी समय से नोट कर लेना चाहिए जिनका फिर सामग्री संकलन करते समय या शोध प्रबन्ध लिखते समय उपयोग करना चाहिए। अतन्त्रिक सहायक के द्वारा किया हुआ काम बहुत ही प्रविष्टसनीय प्रामाणिक और सामान्य स्तर का होता है। इसी कारण महामहोपाध्याय डा पी वी बाने ने अपने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' (History of Dharma Shastra) के प्रबंधों का निरीक्षण करने के लिए स्वयं ? से भी अधिक प्रसंगों को देखा और उसको मौलिक हति के साथ बहुत ही योरता पूर्वक मिलाया। इस प्रकार का व्यक्तिगत सर्वेक्षण कार्य के महत्त्व को बहुत बढा देता है।

२२ धर्म का पूर्य अध्ययन

यदि अनुसंधान किसी एक विशेष एक ही सीमित है तो कई बार बहुत गभीर और पूर्ण अध्ययन करना अत्यन्त लाभदायक है। प्रत्येक बार नये अध्ययन में प्रापको कुछ नये बिचार मिलेंगे जिनसे प्रापके प्रतिपाद्य विषय में महत्तर घाटी है।

२३ शोध-प्रवन्ध का सिद्धांत

जब सामग्री का संकलन पूरा हो जाता है हम शोध प्रबन्ध के लिखने की बात साज सकते हैं। मयी सामग्री को प्राप्त करने की कठिनाइयाँ तो सर्वथा बनी रहेंगी। इसलिए इन विषय में अपने निर्रेक्षण से परामर्श कर लेना ही अच्छा रहेगा। कुछ ऐसे भी छात्र होते हैं जो अपने निर्रेक्षण या परामर्श के लिए दूसरे विद्वानों से भी सहायता लेते हैं। सामान्यतः ऐसा करने में कोई हानि नहीं है। लेकिन ऐसा कि मानव-स्वभाव होता है, ऐसा करने में प्रापके नुब की के प्रसन्न हो जाने का डर बना रहता है। इसके अतिरिक्त बाहरी विद्वान द्वारा समय-समय पर किए गए जर्न और निरूपण से प्रापके मौलिक चिन्तन का धारार अध्यवस्थित हो जाता है। और फिर प्राप उस नुब प्राप्ती और लक्ष्य की कहानी की मांति इतर-उतर बुझिया में मटकत रहेंगे। इन तरह प्रापके नुब के प्रति प्रापकी भक्ति कम हो जाती है और यदि प्रापके नुब प्राप म रचि नहीं रखते हैं और प्रापके प्रति उवासीन हैं तो इससे प्रापको हानि पठावी पड़ती है। इसलिये शोध समसकर अपना नुब बुझिया के साथ उनका अनुसरण करिये अपना समस्याओं और बिचारों को निर्मय होकर उनके सामने रक्षित और जब भी प्रापकी प्रगति के मार्ग में कोई बाधा उठ लड़ी हो तो सहायता लीजिए। अपनी लयन और मन्धे कार्य क द्वारा उनकी सुबकामना तथा स्नेह प्राप्त करिये। वह प्रापको अपने मन्धे की प्राप्ति में सर्वे सहायता प्रदान करते रहेंगे।

पुस्तकालय का उपयोग

जो सज्जन खोज के लिये प्रस्तुत होते हैं, वह सबसे पहले पुस्तकालय में ही आते हैं और यह तो मान ही लेना चाहिये कि पुस्तकालय को व्यवहार में लाने की जो प्रणालियाँ हैं वे उनसे अनभिज्ञ न होंगे। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी अनुभव किया है कि पुस्तकालय का पूर्ण रूप से उपयोग करने के लिये जो सामान्य ज्ञान की आवश्यकता होती है, वह बहुधा लोगों में नहीं होती। इसलिए ग्रन्थागार में ग्रन्थों के होते हुये भी लोग अपनी अनभिज्ञता के कारण इधर-उधर भटकते फिरते हैं और अन्त में पुस्तकालय व पुस्तकाव्यक्ष को कटु शब्द कहते हुये घर चले जाते हैं। स्वयं बहुत दिनों से इस विषय पर विचार कर रहा था कि किस प्रकार से लोगों में पुस्तकालय के विषय में जानकारी कराई जावे। जब डाइरेक्टर महोदय का आदेश मिला, मैं उसे सहर्ष पालन को प्रस्तुत ही गया, क्योंकि मैंने समझा कि कदाचित् आपके समक्ष उपस्थित होकर यदि मैं अपने दो चार शब्दों में आपको कुछ समझा सकूँ तो शायद आपको और पुस्तकालय को कुछ लाम पहुँचे। अस्तु, पुस्तकालय से प्रायः लोगों की यही धारणा है कि एक ऐसा स्थान जहाँ पर पुस्तकें रक्खी हुई हैं। तर्क की दृष्टि से यह सच्चा ठीक ही बैठती है, परन्तु विचार पूर्वक देखने पर हमें यही प्रतीत होगा कि ग्रन्थागार केवल ग्रन्थों की समष्टि मात्र ही नहीं है। यदि ऐसा ही होता तो पुस्तकालय और किसी पुस्तक-विश्रंता के भंडार में कोई बहुत अन्तर नहीं होता। इसलिये हमको कोई दूसरी सच्चा खोजने की चेष्टा करनी पड़ेगी। मैं अपनी स्थूल दृष्टि से तथा अनुभव से पुस्तकालय को एक सस्था-मात्र ही नहीं समझता। पुस्तकालय वही है जहाँ पर प्रत्येक अन्वेषक को अपनी आवश्यकतानुसार और प्रयोजन सबधी सारी आवश्यक सामग्री उपलब्ध हो और जहाँ पहुँच कर अन्वेषक एक भिन्न वातावरण अनुभव करे और अपने कार्य में दत्तचित्त होने का अवसर प्राप्त हो। पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की पुस्तकें एक विशेष रीति से रखी जाती हैं और पाठक वर्ग को उस रीति का सामान्य ज्ञान होना चाहिये। इसी को पुस्तकालय विज्ञान की भाषा में वर्गीकरण (Classification) कहते हैं। इस विषय में आगे विस्तार पूर्वक आलोचना की जावेगी। इस समय मैं आपको पहले पुस्तक-संग्रह की विविध प्रणालियों के ऊपर कुछ बताऊँगा।

जिस समय पुस्तकालय अपने पुस्तकालय के लिये पुस्तक-संग्रह करता है, वह सबसे पहले इस विषय को ध्यान में रखता है कि जो भी पुस्तको का काम हो उनकी वास्तविक आवश्यकता है या नहीं। ऐसे ही प्रतिदिन संकड़ो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं किन्तु सभी को पुस्तक कहना प्राणित होना। बहुत सी पुस्तको ऐसी होती हैं जिनका प्राबल्य बहुत ही अधिक होता है। और इनके विषय में बहुत बड़े दिनों में ही हम लोग मूल पाठे हैं। इसलिये एक बड़े अंशगार में केवल उन्ही पुस्तको का स्थान होना चाहिये जिनकी विषय-वस्तु सम्भार हो तथा जिनके उपयोग से वर्तमान तथा भविष्य के पाठको का उपकार हो। यह एक अत्यन्त कठिन काम है क्योंकि बहुत सी पुस्तको की उपयोगिता तरकाम ही बात नहीं होती। सम्भव है आज जिसको हम बहुत ही पुष्प समझते हैं, भवामी पाठ वर्ष में उसको उपयोगिता बहुत कम बड़ पाठ और जोको उस विषय में उत्तुक्ता हो। इसलिये पुस्तक-संग्रह का पहला नियम यह होना चाहिये कि विषय वस्तु का उपयुक्त निर्वाचन हो। फिर जिन जिन संज्ञको ने ज्ञान विज्ञान तथा विभिन्न शाखाओ में प्रमत्त स्थिति प्राप्ति की है उनको रचनाओ का धारा संग्रह पुस्तकालय में होना चाहिये। तृतीयत पुस्तकालय को यह ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है कि उनके विश्वविद्यालय व विद्यापीठ में कितने विषयो पर ज्ञान की जा रही है। उन्हें नवीन विचार धाराओ से पूर्ण रूप से परिचित होना चाहिये और प्रमुख अध्यापको तथा विशेषज्ञों के साथ सम्पर्क स्थापित करके उनके ज्ञानामुसार कार्य करना चाहिये। यह कार्य जितना सरल सम्भो में कहा गया है उतना सरल नहीं है। इसमें प्रयोगात्मिक की सब तरफ से सहायता मिलनी चाहिये। और जब तक विश्वविद्यालय में सभी अध्यापको बगैरे सहयोग नहीं है तब तक इस विषय में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

जब मैं प्रायको पुस्तको के वर्गीकरण के बारे में जो कि हमारा मुख्य कार्य है निर्देशन करना चाहूँगा। हमारे इस प्राचीन देश में पुस्तकालय कोई नवीन वस्तु नहीं है। गणरा तथा लक्ष्मिणा की बात तो छोड़ दीजिये। भारतवर्ष में सभी समय पुस्तक संग्रह की रीति सभी वर्गों के लोगों में पाई गई है। स्वान ज्ञान तथा पाठ के भेद से संग्रह में कुछ अन्तर प्रकृत ही था जमा है। परन्तु मूल नीतियो में कोई विशेष पार्थक्य दिखाई नहीं देता। वर्तमान-कालीन यूरोपीय सम्प्रदाय ने हमको पुस्तको के संरक्षण तथा वर्गीकरण में कुछ नवीन ढंग सिखाया है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हमारे यहाँ पुस्तक रखने की रीति कुछ भी ही नहीं। जो कुछ भी हो हम लोगो ने समय की देखते हुए तथा युग की आवश्यकताओ को पूरि के लिये कुछ नवीन रीतियां अपनाई हैं और इन्हीं रीत ने हमारे देश में पुस्तको का वर्गीकरण होता है। सभीसभी धर्माधी के दोष मान न अमेरिका में मलरिक्त ड्यूरी नाम के एक संरक्षण हुये। उन्होंने प्राचीन रीतियों को त्याग कर एक नई प्रणाली निकाला। उन्होंने ममस्त ज्ञान भंडार को दस बड़े विभाओं में विभाजित किया और प्रत्येक भाग का आधुनिक रीति से वर्ग और विभाजित किया। इस प्रकार जब मिनाकर कुछ ही विभाओं में मनुष्य के ज्ञान भंडार को बाँटा। असाहसक स्वस्त उनको यहाँ सिखा जाया है।

000 General	510 Maths
100 Philosophy	520 Astronomy
200 Religion	530 Physics
300 Social science	540 Chemistry
400 Philology	550 Geology
500 Pure science	560 Paleontology
600 Applied Arts	570 Biology
700 Fine Arts	580 Botany
800 Literature	590 Zoology
900 History	

इससे आपको विदित हो जायगा कि पुस्तक को वर्गीकरण में मुख्य वस्तु उसका विषय है। जो पुस्तक जिस विषय में आती है, उसको उसी विषय में रखा जाता है और दाशमिक रीति से उसमें अंक डाले जाते हैं। वही अंक उस पुस्तक का विषय नम्बर हो जाता है। फिर लेखक के नामानुसार आद्याक्षर लिया जाता है और एक निश्चित पद्धति के अनुसार उसको सख्या दे दी जाती है। ग्रथ का आदि अक्षर इसके बाद में लगाया जाता है। तब ये पूरी पुस्तक वर्गीकृत होकर उसी विषय की ओर पुस्तक के साथ प्रथागार में चली जाती है। इसका आशय यह नहीं है कि वहाँ पर वह पुस्तक अपनी निजस्वता को खो देती है किन्तु उसका स्थान नियत है और सर्वदा वह उसी स्थान पर रहेगी।

उदाहरण—

- 1 India—A short cultural History, Rawbinson 934054 R26I
- 2 Literature of England A D 500-1946- Gillett 8209 G 61 L

उदाहरण—

भारतवर्ष के विभिन्न पुस्तकालयों में ड्यूई की इस दाशमिक प्रणाली को मान लिया गया है परन्तु इसमें कुछ त्रुटियाँ हैं। ड्यूई ने अपने देश के प्रयोजनानुसार इस पद्धति को चलाया था किन्तु इसमें हमारे प्रयोजन की वस्तुओं का अभाव है, उदाहरण —

Indian Philosophy,	Indian History
181 4 Religion etc	934, 954

इन सब विषयों के बारे में नाम-मात्र का उल्लेख है और यदि इनको इसी ढंग से ही रखा जावे तो हमारे कार्य में बहुत सी अमुविधायें उपस्थित हो जाती हैं।

वेदान्त के साथ चार वाक दर्शन

सांख्य के साथ शैव और चन्द्रगुप्त के साथ जहागीर का होना बहुत ही सम्भव है। इसलिए भारतीय विद्वानों ने इस प्रणाली में बहुत कुछ हेर फेर कर दिया है। श्री रगानाथन जी ने तो अपनी एक नवीन वर्गीकरण पद्धति का आविष्कार कर दिया है, परन्तु प्रयोगात्मक

कठिनाइयों के कारण इस प्रणाली का व्यवहार सम्बन्धित रूप से नहीं हो पाया है। प्रपनी प्रयोजन का देखते हुए प्रायः विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हम लोगों ने हिन्दी तथा संस्कृत पुस्तकों को मरठीय भाषाओं में लिखी हुई पुस्तकों से प्रसंग कर दिया है और उनका हमूँ प्रणाली के मूल नीतियों को लेकर एक दूसरी पद्धति में बर्गीकरण किया है उदाहरण—

साधारण	५	विज्ञान	८१	कविता	८२	भाटक	
१	दर्शन	६	व्यावहारिक शिक्षा	८३	उपन्यास	८४	बोध
२	बोध भर्म	७	कला	८१	१ प्रादिकाम	८१	२ बीर
३	समाज-शास्त्र	८	साहित्य		गाथाकाल	८१	२३ मक्ति-कास
४	भाषा शास्त्र	९	इतिहास	८१	१ रीतिकाल	८१	४ १७७२ १८३७
				८१	५ वर्तमान काल		

ज्यो-ज्यो पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या बढ़ती जाती है, त्यो-त्यो उनको खोजना कठिन होता जाता जाता है। इसलिये प्रारम्भ से ही पुस्तकालय में कोई न कोई तकिका प्रस्तुत की जाती है ताकि देखने वाले सरसता से अपनी आवश्यकतानुसार अपनी पुस्तकों का निर्वाचन कर सकें। सबसे पहले पुस्तकों को लेखकों के अनुसार रखा जाता था और उनकी एक लिखित सूची प्रस्तुत की जाती थी किन्तु ज्यो-ज्यो ज्ञान-विज्ञान का विस्तार होता गया और पुस्तकों की संख्या में बहुत वृद्धि होती गई, त्यो-त्यो यह प्रणाली असफल होती गई। वर्तमान काल में जब पुस्तक का बर्गीकरण विषयानुसार किया जाता है तब इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि पाठकों को सीधे-सीधे पुस्तकों के बारे में सूचना मिले-तभी कोई प्रणाली का उद्भव हुआ। साधारणतः प्रत्येक पुस्तक के पार कोई प्रस्तुत किये जाते हैं। प्रथम (Author card) या लेखक के नामानुसार एक कार्ड पर पुस्तक के विषय में सारा विवरण तथा पुस्तक का नाम Title प्रकाशक, प्रकाशन तिथि तथा संस्करण इत्यादि सब कुछ लिखा रहता है। इसी तरह से दूसरा कार्ड पुस्तक के Title के अनुसार प्रस्तुत किया जाता है। तीसरा कार्ड विषय के अनुसार बनाया है और उनको उही तरह से रखा जाता है जिस तरह से पुस्तक पुस्तकालय में रखी हुई है। चौथा कार्ड जिसको कि कुछ कार्ड कहते हैं पुस्तक के पन्ने ही रखा रहता है और यह जिस समय पुरतन पाठक के पास जाती जाती है तब पुस्तकालय में उसका प्रतिनिधित्व करता है और उही के सहारे इस बात को हम बतला सकते हैं कि पुस्तक किसके पास है कि किस दिन वह पुस्तकालय के बाहर गई है और कौन से दिन वह वापिस आयेगी। पुस्तकालय में पुस्तक निर्वाचन के लिये Cataloguing का महाराज सेवा अत्यन्त आवश्यक है। कोई भी मनुष्य पुस्तकालय का सारा धन माया नहीं रख सकता। हम यह मान लेते हैं कि जो कोई भी मनुष्य पुस्तकालय में आये वह या तो लेखक के नाम से परिचित हो या उसको इतियों से जानकारी रखता हो। इस कारण यदि वह Author या Title catalogues को देख तो उनको सात हो जायेगा कि पुस्तकालय में वह पुस्तक है या नहीं। Author और Title catalogues का विषय कोप की नीति किया हुआ होता है। इसलिये जहाँ से प्रमाणित उसे देखने में कोई भी कठिनाई नहीं होनी चाहिये।

Classified या विषयानुसार Catalogue हमको यह बताता है कि किस-किस विषय में कितनी पुस्तकें एक पुस्तकालय में हैं।

साधारणतः जो कठिनाइयाँ पाठक वर्ग को होती हैं, वह पुस्तकालय की वर्गीकरण प्रणाली तथा Catalogue सूची के विन्यास से अनभिज्ञता के कारण होती है। एक दार यदि पुस्तकालय के व्यवहार कार्यों का साधारण तौर से ज्ञान हो जावे तो कोई कारण नहीं है कि उन्हें पुस्तक निर्वाचन में कोई कठिनाई हो। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि कोई पाठक किसी विशेष पुस्तक को अपनी चिन्तानुसार स्थान में खोज रहा है किन्तु पुस्तकालय की प्रणाली दूसरी होने के कारण उसको पुस्तक के होते हुये भी नहीं मिल पाती। उदाहरण स्वरूप राजनीति के छात्र समाजवाद, साम्यवाद और तत्सम्बन्धी पुस्तकों को राजनीति विभाग में खोजते हैं किन्तु उन्हें यदि यह ज्ञात होता कि पुस्तकालय की वर्गीकरण पद्धति के अनुसार इन विषयों की अर्थशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों के साथ देखा जावे तो उन्हें वे सरलता से प्राप्त हो जावेगी। उसी प्रकार से मनोविज्ञान तथा और भी प्रयोगात्मक विषयों का स्थान पुस्तकालय के नियमानुसार निश्चित स्थान पर ही किया जाता है। यद्यपि यह विषय शिक्षा, व्यवसाय, समाज शास्त्र तथा अन्यान्य विषयों के साथ जड़ित हैं। इस कारण से जो भी पाठक पुस्तकालय में आवें उनको चाहिये कि वे सर्वप्रथम Catalogue को देखें। उसमें अगर कुछ कठिनाई हो तो पुस्तकालय के कार्यकर्ताओं से सहायता माँगें। वे सर्वथा उनको सहायता करने के लिये प्रस्तुत हैं और यदि कोई समस्या और उपस्थित होती हो तो पुस्तकाध्यक्ष को सूचित कर देना चाहिये और वह यथा साध्य आपकी सेवा करने के लिये प्रस्तुत रहेगा।

पुस्तकालय के कार्य को सुचारु रूप से करने के लिये विभिन्न विभागों में उसका कार्य वितरित कर दिया गया है और इन विभागों के विषय में यदि संक्षेप में कहा जाय तो वह अप्रासंगिक नहीं होगा। प्रत्येक पुस्तकालय में साधारणतः ३ विभाग होते हैं। वह क्रमशः यह हैं—

(१) आर्डर सेक्शन—

इस विभाग का कार्य पुस्तकों का निर्वाचन तथा उनको प्राप्त करने के विषय में अनुसंधान करना है। जो सूचियाँ अध्यापकगण तथा अन्य पाठक वर्ग पुस्तकाध्यक्ष के पास भेजते हैं, उनमें बहुधा पुस्तकों के विषय में विस्तृत विवरण नहीं होता। उदाहरणार्थ एक विषय का उल्लेख मैं कर रहा हूँ, कुछ दिन पूर्व आगरे के एक प्रसिद्ध विद्वान ने अर्थशास्त्र संबंधी पुस्तकों की सूची भेजी। उस सूची में लगभग साठे चार सौ पुस्तकों का उल्लेख था, किन्तु उनके प्रकाशक, मूल्य तथा संस्करण के बारे में कुछ भी सूचना नहीं दी हुई थी। लेखकों के नाम भी बहुत क्षेत्रों में सम्पूर्ण नहीं थे। इस कारणवश हम लोगों को उसी सूची के अनुसार पुस्तक उपलब्ध करने में बहुत कुछ कठिनाईयाँ हुईं और कुछ समय भी अधिक व्यय हुआ। जब कभी भी ऐसी समस्याएँ उपस्थित होती हैं तब उनको सुलझाना पड़ता है और बहुत अनुसंधान के बाद ही हम लोग पुस्तक के विषय में सारी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। जब तक पुस्तकों का विशद विवरण न दिया जाय, तब तक विज्ञेता उन्हें सरलता से

नहीं प्राप्त कर सकते तथा समय में पुस्तकालय में भी नहीं आ पाती। इसी प्रकार कमी कमी ध्वंसावशेष एसी पुस्तकों की सूची भेजना है या पुष्पाय है और पुस्तक-ध्वंसकारी बर्तन उनकी उपसम्पत्ता को पठित जानकर मनचाही मूल्य मांगते हैं। इस ध्वंसका में हमारे सामने एक कठिन समस्या आ जाती है; यदि हम उस मूल्य को प्रस्तुत न करें तो बहुत सम्भव है कि ऐसे बुनम प्रश्न फिर हमें न मिल सकें। और यदि हमने उनका मुख्य मनचाहा दे दिया तो सेवा-परीक्षाक प्राप्ति उचित है। इन परिस्थितियों में साधारणतः हम लोगों को कुछ विवेचना में धारणापन होना पड़ता है तथा उन्हीं के मतानुसार पुस्तक का मूल्य स्थिररूप में होता है। कुछ दिन पहले एक ध्वंसक दुष्प्राप्य ग्रन्थ की प्रतियाँ जिसका नाम वाचस्पत्यम् है हमारे हाथ आया। पुस्तक विक्रेता ने कुछ अधिक मांगा। धीरे समय का चलते हुए तथा पुस्तक की दुष्प्राप्यता को ध्यान में रखते हुए वही मूल्य चुकाना पड़ा। किन्तु सेवा परीक्षाक ने उस विषय में प्राप्ति की है तथा मामला अभी तक नहीं सुलभ है।

इस सब उदाहरणों का देन का अभिप्राय कबल यही है कि प्रायः लोग हमारी कठिनाइयों को कुछ बाधा बहुत अनुभव करने की चप्टा कर तथा पुस्तक को प्राप्त करने में कमी-कमी जो बिनाश हो जाना है उसको समझने की हवा करें।

प्रत्येक पुस्तकालय की यह इच्छा होती है कि पाठक वर्ग संतुष्ट रहे। वह यथा साम्य चप्टा करता है परन्तु कुछ परिस्थितियों में पुस्तकों को उपसम्प करने में एसी होती है जिसके ऊपर उसका बल नहीं चलता।

(२) पुस्तकालय में पुस्तक आ जाने के बाद cataloguing विभाग में पुस्तक आती है। वहाँ उसकी पूरी जाच होती है तब उसके काठ इत्यादि बतकर तथा बर्गीकरणक पत्राण प्रकाश में भेज दिया जाता है। यह प्रकाशनी भेजे बड़ी है और वह बहुत ही टेढ़ी-मेढ़ी है और इस कारण उसका बर्णन प्रायः सामने नहीं करना आता है।

(३) जब पाठक वर्ग के सामने पुस्तक उपस्थित हो जाती है और वे उसको अपने व्यवहार में ला सकते हैं। catalogue को देखकर उसका बर्गीकरण नम्बर लिखकर बैसा कि पहल बताया या चुका है। प्राधान प्रदान विभाग को दे दीजिये। वे पुस्तक को प्रायकी सेवा में उपस्थित कर देंगे। यदि वह पुस्तक किसी दूसरे सम्बन्ध के पास है तो वे सूचना भी प्रायकी बड़ी दे दी जावेगी। कमी कमी एसा भी होता है कि बिना क्रम से पुस्तक रखी जाती जाहिये, वह क्रम भ्रमबध दूट जाता है और पुस्तक मिलने में कठिनाई हो जाती है। ऐसी स्थिति में प्रायकी जाहिये कि प्राय प्राधान प्रदान विभाग को सूचित करें और यदि सम्भव हो तो कमी-कमी स्वयं भी बाधा कट करके पुस्तकालयक को बतावें। प्राधान प्रदान विभाग में सूचना देते समय इस बात का ध्यान रखा जावे कि जब कमी प्राय पुस्तक का नम्बर लिखें वह ठीक वैसा ही हो बैसा कि बाई में लिखा हुआ है। यदि हममें कोई धसूदि हुई तो पुस्तक मिलने में कठिनाई हो सकती है। उसी तरह से सेवाक का नाम पुस्तक का Title लिखने में कोई धसूदि नहीं होनी चाहिये।

(४) हमारे देश में पुस्तकालय में बैठकर पढ़ने की प्रवृत्ति बहुत ही कम पाई जाती है किन्तु यदि सोचा जाय तो आप लोग हमसे सहमत होंगे कि पुस्तकालय में बैठकर पढ़ने में सुविधा है। घरों में बहुधा बढने का उपयुक्त वातावरण नहीं होता और न पढाई का क्रम ही बनता है। मिश्रवर्ग कभी न कभी आ जाते हैं तथा गृह-कार्य बाधा उपस्थित कर देते हैं। बहुधा ऐसा भी होता कि जो पुस्तक हम पाठागार से लाते हैं उसको आलस्यवश कई दिन तक देखने का अवसर ही नहीं होता। और पुस्तको को लेते समय जिन विषयो के बारे में हमने सोचा था वह भी ध्यान से उतर जाते हैं। एक और भी दायित्व पुस्तक व्यवहार करने वाले पर आ पडता है। वह यह कि यदि आप किसी पुस्तक को अधिक समय तक अपने पास रख लेते हैं तो दूसरे व्यक्ति उससे लाभ उठाने से वंचित हो जाते हैं। अतः सब का यह कर्तव्य है कि पुस्तक को यथासम्भव शीघ्र लौटाने की चेष्टा करें और ऐसा करने से पुस्तकालय के संचालन करने में बहुत कुछ सरलता आ जाती है। पुस्तकालय में कुछ ऐसी पुस्तकें हैं जो अपनी दुष्प्राप्यता के कारण तथा कुछ अन्य कारणों से पुस्तकालय से बाहर नहीं जा सकती तथा उनके पढ़ने का एक मात्र साधन पुस्तकालय का पाठागार ही है, वहा का शान्त वातावरण तथा उपयुक्त व्यवस्थाएँ आपके पठन-पाठन से सहयोगी बनता है। और आपको उसका पूर्ण सुयोग लेना चाहिये।

अब तक मैं आपसे पुस्तकालय के विभिन्न विभागों का तथा वहाँ से उपलब्ध सेवाओं के विषय में कुछ निवेदन कर रहा था। अब मैं आप लोगों को पुस्तकालय में खोज सवधी प्रमुख आवश्यक पुस्तको को बतलाने की चेष्टा करूंगा जिनसे आप के कार्य में सहायता पहुँचे।

अन्वेषको को बहुधा कोष तथा ऐसी दूसरी पुस्तको की सहायता लेनी पडती है जिनमें मनुष्य की ज्ञान-विज्ञान सवधी विविध सूचनाएँ दी हुई होती हैं। इन सब में Encyclopaedia Britanica का नाम सब से पहले उल्लेखनीय है। इनमें जिन विषयो का वर्णन होता है वह बहुत ही आधुनिक तथा पूर्ण होता है। उन्ही के आधार पर अन्वेषक को खोज सवधी विषयो में सहायता मिलती है। इसी प्रकार से Encyclopaedia Americana तथा Annual Register भी हैं जो कि इतिहास, राजनीतिक घटनाएँ, विज्ञान, साहित्य तथा कला के विषय में तथ्यपूर्ण सूचनाएँ देते हैं। हमारे ग्रन्थागार में हिन्दी का एक-मात्र विश्वकोष हिन्दी विश्वकोष है। यह सभी अन्वेषको के लिये अत्यन्त कार्यकारी सिद्ध हुआ है।

एक अन्य सहायक पुस्तक समष्टि Bibliography है। इनसे हम विभिन्न विषयो की खोज लगा सकते हैं और इनकी सहायता से हम अपनी सूची प्रस्तुत करने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। भारतवर्ष का राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा Cumulative Book Index हमें इस दिशा में बहुत कुछ मदद करते हैं। National Library की सूची अब सभी भाषाओं की पुस्तको में प्रस्तुत की जा रही है और जिन समय Indian National Bibliography बन जायगी तब हमें भारतवर्ष में प्रकाशित पुस्तको की यथेष्ट जानकारी हो जावेगी।

Cumulative Book Index में सन् १८१८ से लेकर वर्तमान काल तक की जितनी भी पुस्तकें पेंसजी भाषा में छप चुकी हैं उन सबका बिबरण दिया हुआ है। प्रत्येक मास इनके पुरक पेंक निकसते हैं और हर साल इसका नया अंक प्रकाशित किया जाता है।

साम्प्रतिक घटनाओं के विषय में यदि कोई सूचना प्राप्त करनी है तो घापका Keesings Contemporary Archives तथा Asian Recorder को देखना चाहिये। इनमें प्रत्येक देश की विराद् घटनाओं का बिबरण है और प्रत्येक पक्षधारे में इसका धक भा जाता है। साम्प्रतिक घटनाओं के बिबरण के सिवे तथा उनका ज्ञान प्राप्त करने के लिय इनस अधिक और कोई सहायक पुस्तक नहीं है। व्यक्ति-विशेष की जानकारी के लिये Year Book या अन्व काप की सहायता लेनी पड़ती है। इनमें प्रत्येक देश का सविष्ट बिबरण होता है तथा साथ में मानचित्र भी दिया रहता है। किसी भी देश के प्राकिक राजनीतिक तथा व्यावसायिक विषयों का इनमें जस्तब रहता है। और इनस सभा का सपष्ट सहायता मिलती रहती है। अन्वेषकों को विशेष सहायता सामयिक पत्रिकाओं में बहुत कुछ मिल जाती है। पत्रिकाओं का पुस्तकालय में एक विशय स्थान है। इनमें समय समय पर बहुत से विशयानुसंग लेख छपते हैं और इनसे अन्वेषकों का बहुत कुछ सहायता मिलती है। इन लेखों में मूल समस्याओं के विषयों में आभास दिया जाता है और क्योंकि ये विद्ययज्ञ के लिये हुये होते हैं इसलिये अन्वेषकों को अपने कार्य में बहुत कुछ सुविधा हो जाती है। पुस्तकालय में पत्रिकाओं का संग्रह करना एक विशय कार्य है और कई अन्वेषकों को अन्वेषण की दृष्टि से नहीं रह सकता। पुरानी पत्रिकाओं की छाड़में एकत्रित करके वर्ष के अनुसार बिल्ड (Binding) करना भी जाती है। इनके प्रतिरिक्त और भी सहायक पुस्तकें हैं जिनके विषय में कहकर मैं आपके धर्म की परीक्षा नहीं लेना चाहता। यदि आप पुस्तकालय में जाने का बन्ट करे तो उनके विषय में मैं आपका बड़ी बतलाऊंगा।

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही ज्ञान-विज्ञान के लिये प्रसिद्ध रहा है। हमारा यह देश, जिस समय पृथ्वी का और भाग अधकार की कालिमा में छिपा हुआ था, ज्ञान-विज्ञान की गरिमा से आलोकित रहा। यह हमारे अत्यन्त गर्व की बात है कि तीन हजार वर्ष पहले भी हमारे देश में पुस्तकालय का आयोजन था। पर काल के कठोर प्रहार से हमारे वे गौरवमय दिन चले गये और भारतवर्ष के ऊपर बहुत सी आपत्तियाँ समय-समय पर आती रहीं। राजनीतिक उथल-पुथल, वैदेशिक आक्रमण तथा तदानुसंगिक विप्लव से देश को बहुत ही क्षति पहुँची। कुछ दिनों के लिये हम अपनी सारी सत्ता ही खो बैठे। देश के ऊपर एक विदेशी सत्ता ने दो सौ वर्ष तक शासन किया और उनकी चेष्टा यही रही कि भारत में प्रगति न हो। किन्तु युग-धर्म को रोकना उनके साध्य के बाहर था। १८ वीं शताब्दी के शेष भाग से सारे विश्व में जो नई जागृति की लहर दौड़ी, भारत भी उससे बहुत प्रभावित रहा, यद्यपि हमारे देश में विभिन्न राजनैतिक तथा सामाजिक कारणों से इसका प्रभाव कुछ विलम्ब से अनुभूत हुआ। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों में व्युत्पत्ति करने की जो तीव्र आकांक्षा देशवासियों ने अनुभव की उसको रोकने की शक्ति शासक वर्ग में नहीं थी और धीरे-धीरे भारत में ५ भाँति-भाँति के स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालय स्थापित होते चले गये। कुछ लोग विदेशों में भी शिक्षा प्राप्त करने लगे तथा विदेशी ढंग को अपनाया गया, इससे कुछ हानि अवश्य हुई परन्तु लाभ भी बहुत कुछ हुआ। हम लोगो ने यह जान लिया कि हमारी दीन-अवस्था के लिये विदेशी शासक वर्गों को दोषी न कर तथा उनकी चूटियों की आलोचना करने से ही काम नहीं चलेगा। हमें आत्मोन्नति के लिये कठोर परिश्रम तथा त्याग करना पड़ेगा और इस दिशा में पहला उद्यम देश में ज्ञान-वितरण करना प्रथम समझा गया।

देश में शिक्षा-वितरण करने का प्रथम स्तर केवल विद्यालयों के उद्घाटन से ही पूरा नहीं हो जाता यह सत्य हमारे देश के चिंतानायकों ने अनुभव किया और इसीलिए पश्चात्य ढंग से पाठशालाओं की भी स्थापना स्यान-स्यान पर होने लगी। प्रारंभ में इसके विषय में कोई भी पूर्व परिकल्पना नहीं थी, जहाँ कहीं भी लोगो को सुविधा मिली उन्होंने सार्वजनिक प्रयागारों की स्थापना की किन्तु उस समय हमारे देश में प्रकाशित ग्रंथों की संख्या बहुत ही नगण्य थी और बहुधा लोग विदेशी भाषा ही से अपनी ज्ञान-पिपासा निवृत्त करते थे पर कुछ समय पश्चात् जब देशी भाषायें उन्नति करने लगी और इनमें लिखकर बहुत से लेखकों ने अंतरजातीय ख्याति भी प्राप्त की तब देशवासियों का ध्यान इस ओर और भी आकर्षित हुआ। नवप्रभात की सूचना में जैसे चारों तरफ सहसा विभिन्न प्रकार के पक्षी कूजन करने लग जाते हैं उसी भाँति भारत के सभी भागों में शक्तिशाली कवि,

उपस्थासकार, नाटककार तथा अन्याय साहित्यकारों का जन्म हुआ और वे अपनी प्रतिभा के बंदीप्यमान प्रालोक से चारों दिशाओं को प्रालोकित करने लगे। जब पुस्तकों की समस्या बुर हुई तब अपने प्राय उन्हें उचित ढंग से संग्रह करने का प्रयोजन भी अनुभव किया गया। किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई जो हमारे सामने आई वह पुस्तकों के संग्रह करने की विधि में आई गई। बिदेसी शासक इस विषय में पूर्ण उदासीन थे और इन पुस्तकालयों को सर्वथा संदेह की दृष्टि से देखते थे पर उनमें से एक ऐसा सज्जन भिक्षुना जिसने एक महत् कार्य किया। सार्ड कर्जन को हम देश में विनाश होने वाला तथा कट्टर साम्राज्यवादी के रूप से ही जानते हैं पर इन सब प्रवृत्तियों के होते हुए भी सार्ड कर्जन ने देश की सांस्कृतिक उन्नति में जोड़ा बहुत हाथ बटाया था। उसी की प्रेरणा से हमारे देश में परातत्त्व विभाग की स्थापना हुई और पहले पहल Imperial Library का विद्याभ्यास किया गया। सन् १९२२ में एक सार्वजनिक पाठालाघ को राजकीय मान्यता प्राप्त हुई और Imperial library को केन्द्रीय सरकार से प्राथिक सहायता भी जाने लगी। पर सार्ड कर्जन के जैसे जाने के परभाव ही इसकी धीरे से शासक वर्गों का ध्यान हट गया तथा इसकी सहायता भी कम कर दी गई। Imperial library ने कुछ बुरे दिन भी बेटे पर सीमाव्यवस्था कुछ प्रसिद्ध विद्वान इसके कर्णधार स्वस्म रहे और उन्होंने अपने प्रयत्नों से इसको उन्नतिशील बनाये रखने का प्रयास किया। इनमें से हरिनाथ डे और प्राणाकुस्मा साहब का नाम उल्लेखनीय है। इन जो महानुभावों में हमारे देश में पारब्रह्म ढंग से प्रकाशित विज्ञान-संबंधी प्रसिद्धि का भी प्रायोजन किया और देश में प्रकाशित प्रारोक्षण में एक नये प्रभ्याय का भीयोजन हुआ। भारतवर्ष के स्वाधीन होने के परभाव Imperial library का नाम National Library में परिवर्तित हो गया और कुछ दिनों परभाव इसे copy right Library भी बना दिया गया जिसका धर्म यह है कि देश में जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हों उनकी निश्चित प्रतियाँ यहाँ भेजी जाती हैं और इस मति वास्तव में यह एक जातीय संपत्ति में परिवर्तित हो गई है। भारतवर्ष की सभी भाषाओं की प्रकाशित पुस्तकों का समावेश यहाँ किया जाता है। इस मति यहाँ सभी पुस्तकों के बारे में सूचना प्रवचन मिल जाती है। हमारे देश के सभी स्वार्थों के बचपक यहाँ के पुस्तक-संग्रह से लाभ उठाते हैं और यहाँ से विभिन्न भाषाओं में पुस्तक भेजन की भी व्यवस्था है। इस समय यहाँ पर लगभग ८ लाख पुस्तकों का संग्रह है तथा विभिन्न भाषाओं की पुस्तक क्रमानुसार यहाँ रखी हुई है। इसके उपरान्त यहाँ का Reference Section बहुत ही समृद्ध है और धर्मवेपका के सभी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर शीघ्रतिशील देने का प्रयत्न किया जाता है। हाल ही में Indian National Bibliography प्रकाशित करने की भी योजना पूरी हो चुकी है और इसकी सम्पदा में भारतीय महति तथा मानव विज्ञान की भी प्रासंगिक सूचियाँ (Bibliography) प्रगुन की गई है। इन कार्य को पूर्ण करने के लिये यहाँ पर सभी भाषाओं के प्रतिष्ठित विद्वानों का समावेश किया गया है और यद्यपि इसकी प्रगति कुछ बिसंबित है फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि जब यह कार्य पूर्ण हो जायेगा तब एक महान करमाने का परिणामी होगा।

इस देश के प्रमुख ग्रथागारो में लोकमभा ग्रथागारो का एक विशिष्ट स्थान है, यद्यपि इसकी स्थापना सन् १९२१ में हुई थी, स्वाधीनता के बाद ही इसने उल्लेखनीय प्रगति की है। यह लोक सभा में ही स्थित है। इसके उपयोग का अग्राधिकार लोकमभा के सदस्यो में ही सीमित है फिर भी अनुमति लेकर भारत का कोई भी नागरिक इसका उपयोग कर सकता है। यह भी एक Copy right library है किन्तु इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय राजनैतिक पुस्तक-पुस्तिकाओं का संग्रह करना है। पुस्तको का समावेश यहाँ बहुत ही नवीन ढंग से किया जाता है और अन्वेषको को सब तरह की सुविधायें दी जाती हैं। संग्रहकर्ताओं की रुचि प्रधानतः राजनैतिक तथा प्रशासन सबधी होने के कारण यहाँ पर उन विषयो से सम्बन्धित सारी पुस्तकें, रिपोर्ट्स तथा भारत सरकार द्वारा प्रकाशित विभिन्न पुस्तकें एकत्रित हैं और इन विषयो में खोज करने वालो के लिये यह सर्वोत्तम स्थान है। यहाँ पर वर्तमान ग्रथ-सख्या ३ लाख से भी अधिक है। समाचार पत्रो का संरक्षण यहाँ पर वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। प्रमुख समाचार पत्रो के microfilm reader प्रस्तुत करने की भी आयोजना है। microfilm reader की व्यवस्था होने से लोग सरलता से इसका उपयोग कर सकते हैं। एक research and reference section इसके साथ संयुक्त है जो कि तरह-तरह की समस्याओं के सुलझाने में सहायता देता है। लोक सभा के सदस्य बहुधा सदन में प्रश्नादि पूछा करते हैं और उन प्रश्नो का उत्तर देने के लिये यथेष्ट reference सामग्री यहाँ एकत्रित की गई है। यद्यपि सर्वसाधारण के लिये इसकी सेवा-सुविधा सर्वदा उपलब्ध नहीं होती फिर भी अन्वेषक यहाँ से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही उठा सकते हैं।

हमारे देश में शिक्षा की प्रगति के साथ-साथ ग्रथागारो का विकास भी पूर्ण रूप से हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो विश्वविद्यालय से सलग्न ग्रन्थागार ही ग्रथागार कहलाने के योग्य हैं। जिस समय विश्वविद्यालयो की स्थापना हुई उस समय ग्रथागारो के विषय में प्रतिष्ठाताओं का अधिक ध्यान नहीं था। कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रारम्भ में केवल १५०० पुस्तकें थी। किन्तु धीरे-धीरे उस दिशा में यथेष्ट प्रगति की जाने लगी और विश्वविद्यालय के साथ ग्रन्थागार का प्रकृत स्वरूप क्या होना चाहिए, उस विषय में हम लोग ठीक निर्णय पर नहीं आ पहुँचे। क्या विश्वविद्यालय केवल वहाँ के छात्र तथा अध्यापक वर्ग के अध्ययन में ही सहायक हो या उसका मुख्य ध्येय अन्वेषक को सहायता देना है। यह अभी पूर्ण रूप से निरूपित नहीं हो पाया है। इस समय भारत में ३८ विश्वविद्यालय हैं और शीघ्र ही ५, ६ और स्थापित हो जायेंगे। U G C के सुयोग्य अध्यक्ष श्री C D Deshmukh महाशय इस विषय में बहुत ही उत्सुक हैं कि प्रत्येक विश्वविद्यालय में ग्रथागार की स्थापना पहले हो और विश्वविद्यालय के कार्यकर्ता उस और अधिक से अधिक ध्यान दें। धन की कमी प्रायः अब नहीं है। बहुत से विश्वविद्यालय-पुस्तकालय तो अपने लिये निश्चित धन-राशि को पूर्ण रूप से खर्च भी नहीं कर पाते। विश्वविद्यालय से सलग्न ग्रथागारो में उत्तर भारत में सब से उल्लेखनीय ग्रन्थागार बनारस विश्वविद्यालय का है। महामना मालवीय जी ने ग्रथागार की उन्नति में बहुत ध्यान दिया था और उन्होंने सबसे पूर्व विश्वविद्यालय के ग्रथागार के लिये एक विशेष

मकन का निर्माण भी कराया था। उन्हीं की प्रेरणा से धान बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय संसूत इन्डोलोजी तथा हिन्दी के विषयों में प्रमुख धन्देपत्र केन्द्र बन गया है। इस समय यहाँ पर कुम पुस्तकों की संख्या लगभग ३ लाख की है। पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय डाकू से दुमरे विश्वविद्यालयों को पुस्तकें गहरी भेजता इससे धन्देपत्र का वहीं जाकर धपनी गामिणी जूटानी पड़ती है। सखतऊ विश्वविद्यालय के संतर्गत टीमीर पुस्तकालय उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालय पुस्तकालयों में एक धपना स्थान बनाये है। यहाँ पर समाज धारण मनोविज्ञान तथा धन्देजी साहित्य का संग्रह बहुत धच्छा है और यहाँ का संभागार गर्वश धुमरे विश्वविद्यालयों को पुस्तकें भेजता है और यहाँ पर बैठकर पढ़ने का भी धायोजन प्रति सुन्दर है। कमकता विश्वविद्यालय का पुस्तकालय बहुत विनों से प्रसिध रह्य है। यह सन् १८३० में स्थापित हुआ था। इस समय यहाँ पर लगभग ५ लाख पुस्तकों का धमावेश है। किन्तु पुस्तकालय का तिजी मकन न होने के कारण उधकी प्रसति में पर्याप्त बाधा उपस्थित हो रही है। कमकता विश्वविद्यालय में कथा संसूत धनमा सिम्बनियन तथा दस्तामिक हिस्ट्री और सा का प्रमुख संग्रह है। प्राचीन धर्षों का संग्रह भी यहाँ संराहनीय है।

दक्षिण भारत के पुस्तकालयों के विषय में मुझे कोई विशेष धानकारी नहीं। इससे उनके विषय में कुछ कहता धनपिधार धर्षा समसता हूँ। धापके विद्यापीठ में आ दक्षिण भारत के धम्पापत्र हैं वे धनधय ही धापको इन विषय में परामर्ष दे सकेंगे।

सरकार के धायों की सुविधा के लिये एक Record deptt बहुत विनों से स्थापित कर दिया गया है। धीरे धीरे इसकी धार विज्ञानों का ध्यान धाकपित हुआ और उन्होम धर्षा पर संघीत सरकार की धोषी-धषा का धनधोम प्रारम्भ कर दिया। Record deptt ब्रिटिश काल में Imperial records के नाम से प्रसिध था। स्थापनता के परधान यह National archives के नाम से प्रसिध हुआ। प्रसिध इतिहासधता का सुनेधनाम तीम इसके बहुत दिनों तक धधध रह्य और उसके परधान धान काल का गताधी इकक प्रधाम धावधर्षा है। ऐतिहासिक विषयों की गोर के लिये विधधन ब्रिटिश युग के इतिहास की धायिधी यहाँ ब्रिटनी उपलब्ध होने की उधनी नहीं गयी गिन गधनी। पूना में संधारकर धोरिधधन रिधधं दसठीधसूत तथा दधन धायिध धारधी धधने धधने विधरी में बहुत ही विधधत है। संधारकर धारिधधन रिधधं इरीधसूत में धायिध गध तथा ऐतिहासिक पुस्तकों का बहुत धच्छा धमावेश है और दधन धारिध धधनाध धधनाध तथा भारत की प्राचीन ऐतिहासिक धोषों के लिये इसारे देध में गयी गधध प्रसिध है। इनके विषय में धायिध कुछ धधना धधन गयी गधकता धोरिध धायिध विधायिध य धी हने इन धोनी धधिधधनों से बहुत दिनों तक संधार करे है और इनके विषय में धधिधनी का धायिध धानधधी बननी ही था धे उनके धायिध कर गधने है। Royal Asiatic society of Bengal & Bombay इसके देध की धायिध संधधधों में से है। यहाँ पर बहुत से धान धधधी धधने है और ऐतिहासिक और प्राचीन धधनों का धमावेश

यहाँ अति समृद्ध है। Greater India society का मुख्य पत्र यहीं से निकलता था और डा० बी० सी० लॉ आदि प्रमुख ऐतिहासिक इसके साथ बहुत दिनों से सम्बन्धित रहे और इनको उन्नत बनाने की चेष्टा करते रहे हैं।

हिन्दी पुस्तकों के संग्रह के लिये हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। दोनों संस्थायें हिन्दी पुस्तकों की तथा हस्तलिखित पोथियों के संग्रह में अग्रगण्य हैं और उनका प्रयत्न सदा यही रहा है कि किन सभाव्य उपायों से हिन्दी का कार्य सरलतापूर्वक चल सके। हिन्दी साहित्य सम्बन्धी कोई भी खोज इन दोनों पुस्तकालयों की सहायता के बिना असम्भव है।

प्रसगत आपके शहर में चिरजीलाल पुस्तकालय भी छोटा होने पर भी एक अत्यन्त व्यवस्थित ग्रंथागार है और निजस्व संग्रह होने पर भी यहाँ पर बहुत अच्छी पुस्तकों का समावेश किया गया है।

हस्तलिखित ग्रंथ और उनका उपयोग

भारतवर्ष में ग्रंथों के लिखे जाने की प्रथा कब से आरम्भ हुई यह अभी तक निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। यही कारण है कि वेदों को हम आज भी श्रुति के नाम से पुकारते हैं, तो भी प्राचीनता की दृष्टि से चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' अवश्यमेव-लिखित परंपरा का ग्रंथ है, इसके अतिरिक्त भूर्जपत्र एवं तालपत्र पर लिखी पोथियाँ पाई जाती हैं। भोजपत्र पर लिखी हुई पाई गई प्रतियाँ लगभग १६-१७ सौ वर्ष पुरानी हैं इनमें तालपत्र पर लिखी गई पोथियाँ ११ वीं १२ वीं शती से मिलने लगी हैं। अर्थशास्त्र और पाल पोथियों के बीच की अवधि में लिखे गये ग्रंथ तो नहीं मिले हैं परन्तु उनके जो वर्णन मिले हैं उनसे विदित होता है कि हिमालय के आस पास के प्रदेशों में भोजपत्र का उपयोग होता था और समतल प्रदेश में तालपत्र का।

तालपत्र मुख्यतया दो प्रकार का होता था। एक राजताल दूसरा स्वरताल। यह तालपत्र जावा, सुमात्रा आदि देशों से मँगाया जाता था। आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्धराज जयसिंह से कहा था, "कि अब मेरे ग्रन्थ स्वरताल पर लिखे जाने लगे हैं, क्योंकि राजताल समाप्त हो गया है। इस पर सिद्धराज ने हेमचन्द्र को राजताल मँगवा दिया था।" इन तालपत्रों पर लिखे गये ग्रन्थ सादे तथा चित्रित दोनों प्रकार के हुआ करते थे। ग्रन्थ को सुरक्षित करने के लिये दोनों ओर लकड़ी की पटिया लगी रहती थीं। ये पटियाँ भी बहुधा चित्रित एवं बेल वृक्षों से अलंकृत हुआ करती थीं। नेपाल से पाई जाने वाली तालपत्र की पोथियाँ प्रायः बौद्ध सम्प्रदाय की हैं और उनमें अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता ही अधिक हैं। ये पालपोथियाँ पाल राजाओं के राज्य काल में लिखी गई हैं, इसीलिए इन्हें पालपोथियाँ भी कहा जाता है।

जैन ताल पोथियों के चित्र अपभ्रंश शैली के हैं, जिनमें कहीं-कहीं प्रतीत होता है कि ये अपनी आरम्भिक शैली में हैं पर पाल पोथियों के चित्र निश्चय ही अजन्ता शैली के प्रतीत होते हैं। इन पोथियों के तालपत्र ३ या ४ इंच चौड़े और १५ से लेकर २० इंच तक लम्बे होते हैं। इन्हें सिलसिलेवार रखने के लिये इनके बीच में आर पार

एक या दो छेद होत हैं जिनमें रस्ती (सूज) बासकर ऊपर और नीचे की पट्टियों से बाहर साकर गाठ लगा भी जाती थी। इसलिये इस प्रकार से ग्रथित पत्रों को 'बब नाम दिया गया है।

प्राक्कम हस्तलिखित ग्रंथों का पांडुलिपियाँ कहा जाने लगा है। किन्तु प्राचीन काल में पांडुलिपि उस हस्तलेख को कहा जाता था जिसके प्राक्क (मस्विदा) को पहले सक्की के पट्टे या बमीन पर लिखा जाता था और उसे सूख करके घन्व उतार लिया जाता था और उसी को पक्का कर दिया जाता था। हिंदी में यह सर्व निपर्वण संज्ञा के कारण हुआ है। संघर्ष में किसी भी प्रकार के हस्तलेख को 'मैमु स्क्रिप्ट' बहते हैं। चाहे वह किसी लेख का मसौदा हो या किसी घन्व का हस्तलेख।

काम पोषियों के बाद ही कामज पर ग्रंथों का लिखना प्रारम्भ हुआ। कामज का बनना पहले पहल चीन में प्रारम्भ हुआ था। यामे चल कर वहीं से इसका सारे समार में प्रचार हुआ। किन्तु भारत में कामज का यह उपयोग चौदहवीं शती से पहिले नहीं पाया जाता। इस समय यामे जाने वाले हस्तलिखित ग्रन्थों में प्रायः तीन प्रकार का कामज पाया जाता है। १ 'बोती जो घटमेसा भूरे रंग का होता है। २ सफ़ेद रंग का मोटा (इस कामज की निर्माण प्रक्रिया में पत्ता नहीं कहाँ कमी है जिसके कारण बरसाती हवा और शीत से घाव ही घाव इतमें कौड़े उत्पन्न हो जाते हैं जो सारे घन्व को घसती कर देत है।) ३ हल्के कादामी रंग का जो सायद कई एवं कामज की सुपरी में बनता है। इन तीन प्रकार के कामजों के प्रतिरिक्त कभी-कभी सफ़ेद बिज्जों कपड़े का पुनःकाचार काट कर उस पर भी ग्रंथ लिखे जाते रहे हैं। जमके पर जैनघास एवं कारमी घरकी के पत्रों की लिखावटों के नमूने भी पाए गए हैं। सक्की के पट्टों पर भी कौन से खाई हुए कृष्ण लख मिले हैं।

कामज के बाद पत्रों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है रोखनाई। जिस प्रकार लिखावट में हल्की प्रमाण होती है समी प्रकार पत्र की पक्की लिखाई के लिए पक्की रोखनाई भी बरकार होती है। इसका पुराना नाम 'मसि' है। रोखनाई बनाने वाले घयग उनके प्रधान में 'बीबिरोपाईन करने वाले को 'मसिजीबी' संज्ञा दी गई थी। रंग बनाने में पुराने मुख्य घय प्रायः सुज्य हा पते रहे। जिनमें से कुछ ये हैं—एरंड के घेन में राखन तार तार एक पोटी में बांध लिया जाय एक मिट्टी की हाँडी में पानी भर कर और उगमें बाँध की हरी पत्तियों ताल कर घाय पर बड़ा दिया जाय। और दोसा पत्र के लिये उग पीपली का हाँडी में भरना दिया जाय। कम से कम एक प्रहर तार बड़ हाँडी घाय पर रंगी जाय और बाणिग की पीपली जमी में पतने की जाय बाणिग के पत्राने पर हाँडी का बूते पर के उतार मेला बाहिए और उग पोटी के ताँत हाँडी पर हाँडी में निरात मना बाहिए, फिर उग कामज को सात के रंग में तरल कर

लिया जाय। इस रोशनाई में कच्चा पानी डालने की प्रथा नहीं थी, जब रोशनाई गाढी हो जाती थी तो उसे लाख के पकाये हुए रस से हल्की बनाते थे। कोई-कोई इसे खरल करते (घोटते) समय गोद भी डालते थे। जिससे रोशनाई में चमक तो आजाती थी, परन्तु एक बड़ा दोष भी यह आजाता था कि बरसात में बरसाती हवा के कारण ग्रंथ के पत्र चिपक जाते थे, जिन्हें छुड़ाने में कभी-कभी पृष्ठ के पृष्ठ खराब हो जाते हैं। ऐसे ग्रंथों के पत्र अलग-अलग करने के लिए बलप्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए वरन् ऋजुता से ही काम लेना चाहिए। इस की उत्तम विधि यह है कि एक मटके में पानी भरकर रख दिया जाय, जब वह मटका पानी से बिल्कुल सीझ जाय तब उसका पानी निकाल कर फेंक दे और ग्रंथ को उसी में लकड़ी के एक गुटके के ऊपर रख दे और उस मटके का मुँह बन्द करदे। कम से कम चार दिन के बाद ग्रंथ को निकाल लेना चाहिए। इस पद्धति से ग्रंथ के चिपके हुए पत्र अपने आप खुल जाते हैं। दूसरी पद्धति रोशनाई बनाने की और है वह यह, कि, लोघ, सुहागा, लिलवरी को समान भाग लेकर भगरे के रस में लोहे की कडाही में लोहे से ही घोटना चाहिए। इस विधि से रोशनाई बनती तो अच्छी है परन्तु पहली के समान सुन्दर नहीं होती है। रोशनाई के प्रसंग में यह भी उल्लेख मिलता है कि एक प्रकार की कच्ची रोशनाई भी होती थी। तृतीय राजतरंगिणी के कर्ता जोनराज ने लिखा है कि मेरे पिता ने दस प्रस्थ भूमि में से एक प्रस्थ भूमि बेच दी थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् खरीदने वाले दसो प्रस्थ भूमि जबरदस्ती भोगते रहे। और विक्रय पत्र में 'भूप्रस्थमेक विक्रीत' का 'भूप्रस्थ दशक विक्रीत' कर लिया था। मैंने जब राज सभा में अभियोग उपस्थित किया तो राजा ने विक्रय पत्र को पानी में डाल दिया, जिससे नई स्याही के अक्षर तो धुल गए और पुरानी के रह गये। इससे यह स्पष्ट है कि कोई कच्ची स्याही भी होती थी। (इस रोशनाइयों से लिखे लेख में आगई अशुद्धि को दूर करने के लिए अक्षर को काटने की प्रथा नहीं थी, वरन् उसी पर हरताल फेर दी जाती थी। जिससे वह स्थान पीला हो जाता था। यदि आवश्यकता होती थी तो उसी पर लिख दिया जाता था अन्यथा यों ही छोड़ दिया जाता था। यों तो साधारण रूप से पक्तियों को अलग करने के लिए लाल रोशनाई का ही प्रयोग होता था परन्तु कभी-कभी हरताल से भी यह काम लिया जाता था।

ग्रंथों में पक्तियों की सुरूपता पर बड़ा ध्यान जाता था। बिना पक्तियों के कोई ग्रंथ नहीं लिखा जाता था। कागज पर पक्तियाँ करने के लिए भी एक प्रकार की पट्टी का प्रयोग किया जाता था। लकड़ी की चौरस पट्टी को लेकर जिस प्रकार की पक्तियाँ बनानी होती थी उसी प्रकार की बराबरी नाप करके दोनों ओर एक दूसरे के समानान्तर छेद कर लिए जाते थे। फिर उनमें इस प्रकार सूत्र पिरो दिया जाता था कि कागज उसके ऊपर रख कर दवाने से पक्तियाँ अपने आप उभर आती थीं। और उनके सहारे ग्रंथ लिखा जाता था। इस पट्टी को तैयार करने के समय इस बात का ध्यान रखा जाता था कि जिस आकार के कागज पर, अर्थात् ग्रंथ के पत्र जितने लम्बे चौड़े रखने हों, पट्टिया भी उतनी ही बड़ी बनाई जाती थी।

उस मामकी एमन हाजाने पर ही सयक (सिविङ) संघ का निर्गुना धारण करता था । यदि संघ में सयक बहुत होते थे और उन्हें दूसरी राजनारी से सिचने की आवश्यकता समझी जाती थी जमा कि प्राय जयन या पहले एक प्रकार की तिनापट समाप्त कर ली जाती थी फिर दूसरी राजनारी से सारे धीपक बांध दिए जाते थे । ऐसे कुछ हस्तसेय देसन में पाए हैं जिनमें सेयक मूल की नानी राजनारी से निक गया और धीपक सिचने के लिए जयह छोड़ता जाता था पर कामाखर में उसे समर नहीं मिला और छोड़ा हुआ स्वान रिक्त का रिक्त बना रखा ।

विहित पोबियों की भा यही परिपाटी थी । सेयक (सिविङ) संघ निर्गुना बना जाना का और जिस जिस प्रसंग में जा विन बनाने आवश्यक होने से उन्हें हाथिमें पर सिचता जाता था जब प्रथम सिच जाता तब चिन बनाए जाते थे या पहिले चिनकार सब दिनों के रेखांकन कर देना या और हाथिपर पर बना प्रसंगों का ह्याप करता जाता था फिर सेयक (सिविङ) उस प्रसंग सहित संघ का सिचकर पूरा करता था । ऐसे प्रसंगों के भी उदाहरण देखने में आते हैं कि जिनमें नर्पाय या सिच गए परन्तु उस पर विन नहीं बन सके केवल कथा के रेखा चिन ही बनेहुए रह गए ।^१

प्राय हस्तलिखित पोबिया कास राजनारी में पंक्ति धीप कर बनाए जाते थे प्रथम सिचानट क बचान से ही स्पष्ट हो जाते थे । पक्ति में छूट के लिए कंडिका () लगाकर हाथिमें पर छूटे हुए बाधको सिचन की परिपाटी थी । जिन प्रसंगों की टीका अपेक्षित हीनी थी उनमें मूल कीचोबीच की पंक्तिजो में माटे पसरों में लिखा जाता था उसके धीपे अपेक्षाकृत छोटे पसरों में उस का धर्ष प्रथम सिचानट व अनिप्राय लिखा जाता था ।

इसपर जब से हस्तलिखित पोबिया के पढ़ने का उपक्रम होने लगा है तब से नए प्रसंगों के खोजने का भी काम हो रहा है । इस खोज में अनेक विषयों के नामा सिविरी में लिखे हुए प्रसंग भी सामने आये हैं । जिनकी पसरों में इतना वेपम्य है कि उस पर प्रथम से विचार करना आवश्यक हो गया है । हिंदी साहित्य के प्रसंगों के अनुसंधान का कार्य करने वालों के सामने यह एक समस्या उपस्थित है कि हस्तलिखित प्रसंगों के पढ़ खोजने के लिए लिपि (पसरों) समस्या की कौसे सुसम्भाया जाय ।

भारत में जो प्रथम लिखे गये थे प्राय प्रथमप्रसंग भाषा और जैन पद्धति से लिखे हुए थे उनमें बर्णमाता का नामही नहीं था परन्तु कुछ पसरों में अक्षर या और उनकी बनावट में भारी भेद था । इस भेद के कारण साधारण रूप से प्रसंगों को पढ़ पाना सरल नहीं था । भारत के प्रकाशित प्रसंगों में यह बात देखने में आती है । लिपि के ऊपर ह्रास का प्रभाव तो मुख्य है ही प्राप्त का भी प्रभाव कम नहीं पड़ता यही कारण है कि बुधबंश साहित्य में उद्धृत प्रसंगों और माजपुरी की रचनाया के अन्व पंजाबी जोसा भारत किए हुए लिखारे बने हैं । जैसे चिङ — प्यङ गोबिंद — पोम्यंर भावि । यही बात अन्य प्रहिन्पी प्राप्तों की पसरों का है । हिंदी रचनामें अक्षर प्रवेश बिहार अक्षीसक मम्मप्रवेश राजपुताना में बहुत

१ काशी के भारत कला मन्त्र संघहालय में कदनामरज' नाटक की पूरी पोबी इती प्रकार के रेखाचित्रों से उदेही हुई बर्णमाता है ।

अधिक उपलब्ध होती है, इन प्रान्तों के पड़ोसी प्रान्तों में प्रचलित लिपियाँ भी इस सीमा में पाए जाने वाले साहित्य पर प्रभाव डालती पाई जाती हैं ।

लिपिकु लोगों का महावाक्य "यादृश पुस्तक दृष्ट्वा तादृश लिखित मया । यदि शुद्ध मशुद्ध वा मम दोषो न दीयते ।" प्रायः हर पीथी के अंत में लिखा अवश्य मिलता है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि लिपिक ने अपनी ओर से ग्रंथ में कोई नई अशुद्धि न की होगी । क्योंकि इसके लिए भी एक महावाक्य मिलता है—“मुनेरपि मतिभ्रशोभीम स्यापि पराजय , यदि शुद्धमशुद्ध वा ममदोषो न दीयताम् ।” और यदि उसने अशुद्धियाँ की हैं तो कितनी और कैसी की हैं इसे जाँचने का कोई साधन अनुसंधायक के पास नहीं होता । और न यही कि मूल ग्रंथ अब कहाँ है । अधिकांश लिपिक यह भी लिख देते हैं कि उन्होंने किसकी प्रति से और किसके लिए प्रतिलिपि की है, तो भी कालान्तर में उस मूल लेख को न तो खोजा ही जा सकता है न वह सुलभ ही होता है । फिर भी किसी ग्रंथ की प्रतिलिपि को देखने पर यह निर्विवाद नहीं कहा जा सकता है कि लिपिक ने ज्यों की त्यों प्रतिलिपि की है या कुछ कहीं छोड़ दिया है अथवा पढ़ न पा सकने के कारण कुछ का कुछ लिख गया है । यह तो हिंदी का दुर्भाग्य ही है कि अभी तक एक भी ख्यात कवि की किसी भी रचना का कोई पाण्डुलेख नहीं प्राप्त हो पाया है कि जिससे यह जाना जा सके कि उसने अमूक अक्षरी का प्रयोग अपने लिए किया है ।

एक यह भी चलन था कि अपने पढ़ने के लिए ग्रंथ अपने हाथ से न लिखा जाय ।^१ इस निषेध के मूल में लेखको (लिपिको) की जीविका का प्रश्न भी था । जैनियों में अन्य वस्तुओं के दान के साथ पुस्तकें भी दान में दी जाती थी । पंचतंत्र की एक कथा से भी इसकी पुष्टि होती है कि लेखको को परिश्रमिक देकर उनसे ग्रंथ लिखवा कर दान के लिए प्रस्तुत किए जाते थे । संभव है कि इसका सूत्रपात भी लिपिकर्त्ताओं की ओर से ही हुआ हो । इसका एक असर यह भी हुआ कि अच्छे से अच्छा ज्ञाता भी शब्द की शुद्धता के लिए निश्चित नहीं रह गया । तब अर्थ के अनुसार पाठ की मानने की परिपाटी चल निकली । इसके साथ दलील यह दी गई कि निरर्थक शब्द तो मूल में रहा नहीं होगा । और जब इस पाठ का कोई अर्थ नहीं निकलता तो निश्चय ही यह पाठ या शब्द असंगत है । इसके समर्थन में एक बात यह भी कही गई कि जिन ग्रंथों के मूल आज प्राप्त नहीं हैं उनकी प्रतिलिपियाँ भटकते भटकते विकृति की सीमा तक पहुँच गई हैं, उन्हें सही रूप में खोजने के लिए कवि की प्रवृत्ति का साधन करना होगा । यह कठिनाई ऐसे ग्रंथों के पाठ के लिए और भी अधिक उपस्थित हुई कि जिनकी अक्षरी नागरी और नस्तालीक थी । नस्तालीक अक्षरों को पढ़ कर पाठ को ठठ नागरी का बनाने में काफी परिश्रम और अभ्यास की आवश्यकता होती है । कारण यह है कि ह्रस्व और दीर्घ शब्दों को अलग करने के लिए उक्त वर्ण माला में कोई विशेष

१ "गीता शीघ्रो शिर कपी तथा लिखित पाठक ।

अनर्थज्ञोऽल्प कठश्च पठते पाठकाधमा ।"

बिगड़ नहीं है। इन बिगड़ों के न होने से पाठ निर्धारण में हृदय दीर्घ म वा य में भेद कर पाना कठिन होया है। मूत्र-य धीर दस्य बर्षों का भी स्पष्ट नहीं किया जाया। उर्ब तो फारसी धीर धरबी के लिए पहले से ही त्याग्य है। इसलिए उर्बे भी स्पष्ट करण की कठिनाई है। उस लिये स पाठ स्थिर करण काम प्राय शहर पहले स्थिर कर लते हैं तब प्रदारी से उनकी पुष्टि करते हैं। मत्रि तत्पत्तापूर्वक प्रदारी न शब्द बना दिया तब तो कोई बात नहीं घबरा कर फिर दूसरी तलाश प्रारंभ होती है।

नागरी लिपि का मूल उरम ब्राह्मी ही माना जाता है। यह ब्राह्मी लिपि भी मन्म-तमय पर करबटों सेती रही है। प्रयोक्तृनामोन ब्राह्मी में मन्म सेन धीर पास रागरी के राग्य का तद के विसा एवं ताद सत्तों में देया जाता है। काम उ मर तो ब्राह्मी के मन्मे पाए जाने का कई प्रश्न ही नहीं है। पर मोट लिपि में लिपे हुए बही के नोत्र पर कथ प्रथ प्रथम मिले हैं। पुरानी पास पोषियां ता तानत्रों पर ही मिली है। जिनका परिपत्र एक स्वतन्त्र लिपय है। भोजलिपि में लिपे हुए जो ग्रंथ मिले हैं वे भी ब्राह्मी ही लिपि में हैं जो उन की एक घाना कटिका में है इनका समय ६वीं या १ वीं पाती है। इन प्रथम में भोजन की लिपि के काम में भाया जाता था। पर हिंदी भाषा का कोई ग्रंथ नागरी लिपि में भोज वद पर लिप्या हुआ घनी तद देखने न नहीं पाया है।

प्राय हर लिपि में कथ बर्ष धीर शहर एस होते हैं जिनकी शक्ति में प्राय समानता होती है। ऐसे समान बर्षों या शहरों की लिखने समय लिपिकार एक के स्वात् पर दुगरे को लिख सकता है। यदि मूल में एक शक्ति का एक शहर है। तो प्रतिनिधि-कार उसने स्वान वर उतकी समान शक्ति वाले शहर को समक कर लिख सकता है उदाहरण के लिए नागरी में व य ब ब र ब म म प्रादि में उभट फेर हो सकता है। वैन लिपिकारों द्वारा की हुई प्रतिनिधि में व द ब ल ब द, व ब म ब द, ड ई हु में भी इसी प्रकार का भ्रम ही सकता है। कमी-कमी शब्द साम्य से धी पाठ में कल्पना हो जाता है। जैसे रामायण के शरा मुर (१।२३।१०) का सुधमुर ही गया है।

यब तक की प्राय सामग्री में काही नरेया के यहाँ सुरक्षित एक पंचनामा ही एही उदाहरण है कि जो गोस्वामी तुलसीदास जी के हाथ का लिखा हुआ कहा जाता है। गोस्वामी जी की रचनाओं कितना अधिक प्रकार में आई है उतनी कोई दूसरी रचनाओं प्रकार न नहीं आईं। तो भी रामचरित मानस के बाद शायद आर्यवी की रचना पद्यावत का ही स्वान होगा। इस की बहुत सी प्रतिवां शहर उबर पाई जाती है। सुरदास जी की रचनाओं का संज्ञ को सुर-दागर के नाम से प्रसिद्ध है। उधकी भी कोई बहुत पुरानी प्रति कथ तक नहीं मिली है। यही रसा कटीब-कटीब हिन्दी के प्रसिद्ध देव बिहारी मरिण, केचन मूचन प्रादि महाकविओं की रचनाओं की है।

आर्यवी प्रादि सूफी कवियों की रचनाओं नागरी धीर नस्तालीक जिते उद्द के नाम से पुकारा जाता है। बोरी लिपिकों में लिखी हुई पाई जाती है। इसी बीच में एक नई लिपि ईबी के नाम से प्रचलन में आई है। यह लिपि एकदम नस्तालीक (लिपि) के बरत लिखी

पर चलती रही। इस में भी मात्राओं और वर्णों की कमी के कारण किसी भी शब्द को ज्यों का त्यों नहीं लिखा जा सकता है। उसके पाठ में भी नस्तालीक लिपि के समान ही पर्याप्त चिन्ह नहीं हैं। अतः इस लिपि के लेख में भी ह्रस्व दीर्घ का अथवा किसी शब्द की पूरी शुद्धता का निश्चय नहीं हो सकता है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी ग्रथावली की भूमिका में लिखा है “पाठ परम्परा प्रायः उर्दू (फारसी-अरबी) लिपि में चली है, प्रतियाँ अधिकतर इसी लिपि में हैं, और अच्छी प्रतियाँ तो प्रायः इसी लिपि में हैं। जो प्रतियाँ नागरी लिपि में प्राप्त हुई हैं, उनके भी पूर्वज उर्दू (फारसी-अरबी) लिपि के प्रमाणित हुए हैं।”

हस्तलेखों में प्रायः कुछ चिन्ह ऐसे होते हैं कि जिन पर पाठ की शुद्धता बहुत कुछ निर्भर रहती है। लिखते-लिखते यदि किसी अक्षर में दीर्घ मात्रा लग गई और होना उसे ह्रस्व चाहिए था तो उसके ऊपर १ का अक्षर एक आड़ी रेखा या—और यदि ह्रस्व को दीर्घ बनाना हुआ तो २ का अक्षर या = दो आड़ी रेखाएँ खींच दी जाती थी। ये रेखाएँ भी प्रायः अक्षर के ऊपर लगाई जाती थी, परन्तु कभी कभी अक्षर के नीचे भी लगा दी जाती थी।

अक्षरों में भेद तो है ही मात्राओं में स्थान और पद्धति के अनुसार हेर फेर पाया जाता है। ए ऐ और ओ औ की मात्राओं के प्रयोग इस बात के उदाहरण हैं। अक्षर की बाईं ओर ए की मात्रा ا और दाहिने ओर बाँये दोनों ओर औ او की मात्रा का प्रयोग किया जाता था*। मात्राओं की यह पद्धति १२वीं शती से लेकर लगभग १७वीं शती तक चलती रही है। बगला लिपि में आज भी वर्तमान है। मात्राओं का यह क्रम अन्य प्रान्तीय लिपि भेदों में अब तक पाया जाता है। ऊ की मात्रा प्रायः अक्षर के नीचे और कभी कभी बगल में भी लगाई जाती है। समझ है कि र में बड़े ऊ की मात्रा लगाने का जो चलन चला हो वही अन्य अक्षरों के लिए भी लागू हो गया हो। उदाहरण के लिए س (सु) और س (सू) इन दोनों अक्षरों में छोटे उ और बड़े ऊ की मात्राएँ देखी जा सकती हैं। इस कैथी लिपि में ह्रस्व मात्राओं के स्थान पर सर्वत्र दीर्घ मात्राओं का ही प्रयोग मिलता है। जो उर्दू का ही स्पष्ट प्रभाव है। उसमें अगर ठीक नुकते न लग पाए तो शब्द कुछ का कुछ हो जाता है। ह्रस्व इ, उ, ए, औ, के स्थान पर प्रायः दीर्घ ई, ऊ, ऐ, औ, प्रयोग में आये मिलते हैं। कैथी लिपि ने अपने समय में ऐसा विस्तार पाया कि तमाम ग्रंथ उसी में लिखे गए हैं।

इन हस्तलिखित ग्रंथों के उपयोग करने में कई प्रकार की सावधानियों की आवश्यकता रहती है। एक तो जिस विषय का ग्रंथ हो उसकी पद्धति, जिस स्थान पर ग्रंथ लिखा गया हो उस स्थान की लिपि और भाषा का प्रभाव, लिपिक (लेखक) की अपनी भाषा और लिपि का ज्ञान। स्वयं रचनाकार का बहुत भाषा विद् होना या बहुत प्रदेशों में घूमा हुआ होना आदि सब का प्रभाव पाठ पर पड़ता है। उदाहरण के लिए बुदेलखड के कवि की रचना का डेरा गाजी खाँ में लिखा गया हस्तलेख देखा जा सकता है। इस हस्तलेख में कई अक्षरों की बनावट गुरुमुखी अक्षरों के निकट पहुँच गई है और शब्द बुन्देली से पंजाबी

* १५५४ में लिखित कालक सूरि कथानक से।

एवं मुस्तानी बन गए हैं। यही समस्या प्रायः हर प्रकार के हस्तलेख के विषय में है। बिना हस्तलेखों की एक से अधिक प्रतियाँ प्राप्त हो जानी है उनका तो पाठालोवन के सिद्धांतों के अनुसार उपयोग किया जा सकता है। परन्तु जिन ग्रंथों का केवल एक ही हस्तलेख उपलब्ध हो उसके लिए तो सिद्धाय इसके कि उस ग्रंथ के पाठ को बिना बिम्बु विद्यप के परिवर्तन के क्यों का क्यों उपस्थित कर दिया पाड़े मूल शुद्ध हो पाड़े पण्डित। अधिक से अधिक यह किया जा सकता है कि जो ग्रन्थ स्पष्टतः धमूद प्रतीत हो रहा हो उसके धाने () कोष्टक बना कर पुनः धमूद सिद्ध देना चाहिए। या कोष्टक के भीतर ? प्रश्न बिम्बु बना कर छोड़ देना चाहिए। प्रथमी धोर से पाठ में किसी भी प्रकार का हस्तलेख न करना चाहिए।

हस्तलिखित ग्रंथों में उनका रचनाकाल (Date of Composition) और लिपि काल (Date of manuscript) प्रायः सर्वत्रों में दिया जाता है।' वों प्राचीनकाल से धपनी वाच को पूढना में परम्परा करके कहने की तो है ही। सो ग्रंथों के लिए भी सर्वत्रों का प्रयोग प्रायः देखने में आता है। हिन्दी में भी कभी-कभी फारसी की 'मदवयव' प्रथा भी (ग्रन्थों से ग्रंथों को निकालने की पद्धति) के समान प्रथाओं से भी ग्रंथों का नाम लिया जाता है। कभी संवत् के लिए ग्रंथों एवं ग्रन्थों के प्रयोग के बजाय उस संवत् का नाम ही लिख दिया जाता है। इसके लिए यह प्रावश्यक है कि धमूदधान कर्त्ता के पास एक ऐसी सारिणी (बार्) तैयार रहे जिससे वह सीधे ही इस प्रकार की समस्या को सुमस्य से। उत्तर भारत में पाए जाने वाले ग्रंथों में प्रायः विष्णु संवत् का ही प्रयोग मिलता है पर मिजिमा में सदमन्व-संवत् बयान में पास एक सेन संवत्, महाराष्ट्र में एक संवत् प्रायः मिलता है।

इन सबको में विष्णु संवत् और धमूद द्वितीया से और एक संवत् महाराष्ट्र में कालिक धमूद द्वितीया से द्विजपी संवत् आश्वय्य धमूद पक्ष में धारम होता है। इसका मंत्र भी रचना काल और लिपि काल के लिये विचारणीय रहता है। कौची लिपि में लिखे गए हस्तलेखों में प्रायः फसली वा द्विजपी संवत् दिया रहता है। इन संवत्ओं में प्रायः में बोड़े बयों का प्रयोग रहता है। ग्रंथ में दिए हुए संवत्, लिपि वार धावि का मिलान करने का बहुत सुवम उपाय श्रीवान बहादुर स्वामी कम्पु पिस्ने की पुस्तक (द्विजप

१	के लिए	२	के लिए	३	के लिए	४	के लिए
१	क	११	मन	१	क		
२	ख	१२	मन्	४	ख		प
३	ग	१३	मग	५	ग		ब
४	घ	१४	मघ	६	घ		ब
५	ङ	१५	मङ	७	ङ		बु
६	च	१६	मच	८	च		ख
७	छ	१७	मछ	९	छ		ग
८	ज	१८	मज	१	ज		ज
९	झ	१९	मझे	२	झ		ज
१०	झ	२०	ज				ज

एफेमेरीज) में बताया गया है। उक्त ग्रथ में वि० स० १ से लेकर १७४२ तक के वर्षों की विस्तृत सारिणी दे दी गई है, जिससे किसी भी तिथि की पडताल सरलता से की जा सकती है। साधारणतया यह ध्यान तो रखना ही होगा कि ग्रथ की रचना कहाँ हुई है, अथवा ग्रथ का वर्ण्य विषय किस प्रदेश से सम्बन्ध रखता है। क्यों कि यह सभावना तो रहती ही है कि रचयिता ने अपने प्रदेश में प्रचलित किसी घटना प्रधान तिथि का उल्लेख तो नहीं किया है अथवा किसी तिथि के स्थान पर केवल घटना का ही उल्लेख तो नहीं कर गया है।

पूर्वी प्रदेशों में पाए जाने वाले हस्तलेख जो प्रायः कौथीलिपि में होते हैं, उनके सबत् भी फसली होते हैं, कभी-कभी हिजरी सन् का प्रयोग भी मिलता है। यह हिजरी सन् जब मुहम्मद साहेब ने मक्के से मदीने की यात्रा (हिजरत) की थी अर्थात् सन् ६२२ ई० में जब अपने विरोधियों के कारण मक्का छोड़कर मदीने चले गए थे तब से इस (हिजरी सन्) का प्रचलन माना जाता है। किस हिजरी तारीख को विक्रम सबत् अथवा ईस्वी सन् की कौन सी तारीख थी, इसकी ठीक पडताल-में कठिनाई है। हिजरी मास चद्रमा के अनुसार आरम्भ होता है, हिजरी साल में लगभग ३५५ दिन होते हैं, ईस्वी सन् ३६५ या ३६६ दिन का होता है। इस न्यूनता अथवा अधिकता का फल यह होता है कि हिजरी सन् की पहली तारीख प्रत्येक ईस्वी वर्ष की किसी निश्चित तारीख को नहीं पडा करती और हिजरी सन् के ३३ वर्ष सदा ईसवी सन् के ३१ वर्षों के बराबर हुआ करते हैं। जिससे प्रत्येक ३२ या ३३ वर्षों के पश्चात् दो हिजरी सनो की पहिली तारीखें एक ही ईसवी सन् के अन्तगत आ जाती हैं। उदाहरणार्थ १६ व २० हिजरी सन् की तारीखें सन् ३४० ईसवी की २ जनवरी व २१ दिसबर को पडी थी।

हिजरी सन् को ईसवी सन् से मिलान करने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है। कि हिजरी सन् का आरम्भ जुलाई सन् ६२२ ईसवी में हुआ है। दूसरे, हिजरी सन् के ३३ साल ईसवी सन् के ३२ वर्ष के बराबर होते हैं। इसलिए उसमें २ प्रति सैकडा का अंतर पडता है। हिजरी सन् का ईसवी सन् से मिलान करने का सुगम उपाय यह है कि पहिले हिजरी सन् में से उसका $\frac{1}{3}$ भाग घटाया जाय। इसके बाद उसमें ६२२ जोड़ दिए जाय, इस जोड का फल ईसवी सन् होगा।

किसी हस्तलेख का उपयोग करने से पहिले उसके रचयिता के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। फिर ग्रथ के विषय में खोज के लिये हस्त लिखित ग्रथों के विवरण देख लेना चाहिए। इतनी तैयारी के बाद तब ग्रथ की अतरंग परीक्षा में प्रवृत्त होना चाहिए। ग्रथ के पाठ में यदि कहीं विकृतियाँ दिखाई पडती हैं तो उन पर विचार करना चाहिए। ये विकृतियाँ चार प्रकार से आती हैं —

- (१) मूल पाठ में कुछ अपनी ओर से बढा देने की प्रवृत्ति से।
- (२) किसी पाठ को अशुद्ध या अधिक समझ कर छोड देने से।
- (३) किसी पाठ के स्थान पर दूसरा पाठ रख देने से।
- (४) पाठ के क्रम में परिवर्तन कर देने से।

कमी कमी किसी संकेत विशेष को न समझ पाने से हाशिये पर सिद्ध हुए संकेत को घसाकपानी से बूझने स्थान पर सिद्ध पाने से भी पाठ भेद या विकार होता है इस प्रकार घायम सोप विपर्यय और व्यत्यय इन चार के प्रतिरिक्त भी पाठ भेद पाये जाते हैं। इस लिए हस्तलेख में यह भी बेहतर होता चाहिए कि सिपिक ने कही अपनी धोर से कोई सुधार तो नहीं कर लिया है घपना कही कुछ खोज तो नहीं गया है। किसी भी धन्य का पाठ सिपिक की हपीटी पर ही निर्भर करता है। कमी कमी ऐसे भी उदाहरण पाये जाते हैं कि सिपिक सारे धन्य में एक ही प्रकार की घसुद्धि सर्वत्र करता जसा गया है अतः यह उसकी हपीटी का दोष है। स्वयं लेखक द्वारा लिखे गये हस्तलेख में इस प्रकार के दोषों की सम्भावना कम रहती है परन्तु यह तो संयोग की ही बात है कि कही किसी लेखक (रचयिता) का हस्तलेख ही मिस बाय अधिकतर तो सिपिकारों के द्वारा प्रतिमिपि किए गए घाप ही उपलब्ध होते हैं। य सिपिकार भी कमी कमी तो घपना नाम घाम लिख देते हैं पर प्राय यह भी मीन रहते हैं और घपना नाम तक नहीं लिखते ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि इस धन्य की प्रतिमिपि किसने की। यह सब कठिनाईयें होने हुए भी घोष कार्य के लिये हस्तलेखों का बराबर उपयोग हो रहा है और घाने भी अधिकाधिक होना जामना। अतएव बहुत सावधानी से ही हस्तलेखों का उपयोग करना चाहिए। जिसने न ता कहीं सावधान्य बान छूटने पाने और न नहीं घनाकरक बात या बिचारों के घा पाने की संभावना ही रहे।

शिलालेख और उनका वाचन

भारतीय सस्कृति के जिन उपदानों की अब तक छान चीन हुई है उसमें शिलालेख अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। यो लिपि अथवा लेखन के बहुत से प्रमाण तो ग्रंथों में पाए जाते हैं परन्तु लिखित रूप में कोई बहुत पुराना प्रमाण अब तक नहीं मिल पाया है। मुहेंजोदारो और हरप्पा से प्राप्त मुहरो (Seals) में एक प्रकार की लिपि दिखाई देती है, परन्तु उन मुहरो की लिपि को अभी तक पूरी तौर पर पढा नहीं जा सका है। वहाँ अब तक इस प्रकार ३६६ नमूने मिले हैं। जिनमें से कुछ चिह्न सयुक्त से दिखते हैं और कुछ मात्रा लगने से बदल गए हैं। १२ मात्राओं तक के चिह्न मिलते हैं। यह चिह्न अथवा लिपि दाँये से बाँये हाथ की ओर लिखी गई है। मुहेंजोदारो और हरप्पा से अभी तक कोई ऐसा बडा और द्विभाषीय (Bilingual) लेख नहीं मिल पाया है कि जिसके सहारे इस लिपि के अक्षरों को पढा जा सके। इस ओर फादर हेरास, डा० प्राणनाथ विद्यालकार आदि के प्रयास अभी बहुत कुछ अनुमानों पर ही आधारित हैं।

द्रविड सभ्यता के इन केन्द्रों की खुदाई के पूर्व, अजमेर जिले के बोडेली गाँव से एक जैन शिलालेख और गोरखपुर जिले के पिपरावा गाँव से जो लेख मिले हैं उन्हें अब तक के प्राप्त शिलालेखों में सब से प्राचीन माना गया है। शिलालेखों में खुदी हुई वर्णमाला ई० पूर्व ३५० से ही मिलती है। इन शिलालेखों में आज के समान पूरी वर्णमाला प्राप्त नहीं है। इसका कारण यह है कि आरम्भिक शिलालेखों (Inscriptions) की भाषा पाली अथवा प्राकृत है। जिसमें अनेक अक्षरों और उनके रूपों की आवश्यकता ही नहीं होती है। इसलिए चीनी तुर्किस्तान एव सीमाप्रान्त से पाए गए शिलालेखों में कुछ अक्षर कम हैं। भारतीय लिपियों के विषय में दो प्रकार के विवाद हैं। एक तो यह कि भारत में लेखन का प्रचार कब से है और दूसरा यह कि प्राचीन से प्राचीन मिलने वाली लिपि (ब्राह्मी) की उत्पत्ति कैसे हुई। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि ईसा से सातवी शती से पूर्व लोग लिखना जानते ही न थे और यह ब्राह्मी लिपि भारत में पछाँही देशों में प्रचलित लिपियों के आधार पर बनाई गई। उन लोगों का यह कहना है कि अभी तक कोई भी शिलालेख सस्कृत भाषा में लिखा हुआ नहीं पाया गया है जो विक्रम से पूर्व तीसरी शती का भी हो। वैदिक काल के बाद ब्राह्मण युग में आरण्यक एव उपनिषदों की रचनाएँ हुई

की जो सब के सब सूख सख्त भाषा में है प्रथम उस समय का कोई चिह्नानेक । मिट्टी की मुहर (Seal) ऐसी मिलनी चाहिए जो उस वय की लिपि का परि दे सके ।

प्रथम तक के प्राप्य खिलानेखों में ऊपर कहे गए दो चिह्नानेखों को खोज कर सब के सेव ही सब से प्राचीन ठहरते हैं । प्रथोक के दो सेव चार प्रकार के हैं ।

१. स्तम्भ सेव
२. चट्टान पर खुदे हुए सेव ।
३. युष्मत्तों के भीतर खुदे हुए सेव ।
४. फूटकर सेव ।

इन सेवों की लिपि (बाह्यी) के प्रसार इतने सारे और इतने परसंकरन रहित हैं जिससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है यह लिपि की प्रारंभिक अवस्था के सेव है । प्रथोक के एक या दो ही वर्ष पीछे प्रथकों में भुमान-किराव और परसंकरन प्रारंभ हो जाता है । प्रथम यह समय है कि प्रथोक के पहिले और कोई और लिपि रही हो और और उसके पीछे बाह्यी लिपि का प्रचलन हुआ हो । प्रथोक के चिह्नानेक सीमा प्रायः सेवरोप्यी लिपि में भी पाए गए हैं । पर उनकी संख्या प्रथुमियों के वीर पर कितने सावक भी नहीं है, वे केवल मानसेहरा और शाहबाजगड़ी नामक स्थानों में पाए गए हैं । यह लिपि भी बाई ओर से बाई ओर की बसती है । मुबुर दक्षिण के 'परगुडि' नामक स्थान से पाया जाने वाला प्रथोक का एक चिह्नानेक भी इसी पद्धति से उत्कीर्ण किया गया है ।

इस लिपि के बाह्यी नाम का सबसे प्राचीन उल्लेख 'वीनायनी' में पाया गया है । जिसमें प्रथम लिपियों के साथ बाह्यी लिपि का भी नाम दिया गया है । वैसे कि पहिले कहा जा चुका है कि प्रारंभिक चिह्नानेखों की भाषा पानी और प्राकृत होने के कारण उस वर्णमाला में 'ऋ, ऐ, ओ' प्रादि प्रथर नहीं हैं । वैशनागरी की वर्तमान वर्णमाला के हिसाब से इस प्रारंभिक लिपि में पूरे उत्क नहीं खोजना चाहिए । पर वैसे वैसे भाषा में संस्कार घाटा गया वैसे वैसे प्रथरों में भी सुधार होता गया उनमें प्राथम लपने लगी संभ्रुताक्षरों का स्वरूप सुर्मस्कृत और स्किर होने लगा । निम्न संवत् की तीसरी शती तक प्राते प्राते लिपि को कसारभक दृष्टि से सभाने सभारने की प्रवृत्ति भी आयी । मुप्य राजाओं के सामन काल में जहाँ प्रथम सुवरी कलायें विकसित हुईं वहीं लिपिकला (Paleography) ने भी प्रबुर विस्तार पाया । इसका एक कारण यह भी था कि इत वय में बड़े बड़े काम्य संभ रके जा रहे थे । उन्हें लिखने तथा बड़ी-बड़ी प्रयत्नियों को चिसा पट्टी एवं स्तंभों पर उत्कीर्ण कराने की आवश्यकता प्रतीत हुई तब लिपि न भी पर्याप्त सुधार किए गए । यह सुधार इतना परिक हो गया कि प्रथरों में बहुत अधिक भुमान-किराव प्रा गया जिसके कारण मुप्य काल की लिपि को कुटिल

१ एव प्रार नापडिमा ७ हिन्दी प्रादि विधनोविकल मिद्रेवर प्रादि की वीन
पृ. २२८ २६ ।

६वीं शती	११वीं शती	१२वीं शती पाल पोथियों से	१२वीं से १६वीं शती तक जैन पोथियों से	श
२	१	२	२	
२	१	२	२	
३	३	३	३	
४	४	४	९	
५५	५	५	९	
२	८	६	४	
११	३	३	११	
१८	८	८	८	
७	८	८	८	
०	०	९	८	

रीश्रंक

कलक-४

तरद	टाकरी	कैथी	मैथिली	हिन्दी
०	०	१	०	१
३	३	२	२	२
३	३	३	३	३
६	४	४	४	४
५	५	५	५	५
५	५	६	५	६
७	७	७	७	७
५	५	८	४	८
७	७	८	८	८
०	०	०	०	०

६वीं शती	११वीं शती	१२वीं शती पाल पोथियों से	१२वीं से १६वीं शती तक जैन पोथियों से	श
२	१	२	२	
२	११	२	२	
३	३	३	३	
४	४	४	९	
५५	५	५	१२	
२	८	६	४	
११	३	३	११	
१८	८	८	८	
३	८	८	८	
०	०	९	८	

रीअंक

कसक-४

तरदा	टाकरी	कैथी	मैथिली	हिन्दी
०	०	१	०	१
३	३	२	२	२
३	३	३	३	३
६	४	४	४	४
५	५	५	५	५
५	५	६	५	६
७	७	६	७	६
५	५	७	४	७
६	६	८	८	८
०	०	०	०	०

इंडिसेपैसियोवाफ्री, भाव स्यूसर ।

इंडियन एस्टीमरी ।

‘ए प्योरी भाव बी ओरिजिन भाव बी भागरी प्रस्फाबेट’ धामा शास्त्री का लेख

इंडियन एस्टीमरी भा० ३१ पृ २११ १२१ ।

पैसियोवाफिक बोद्ध संहारकर अधिनंदन प्रथ में विष्णु सीताराम मुकुण्डकर का लेख ।

पृ ३ १२२ ।

भाउट साइन्स भाव पैसियोवाफ्री एच भार० कापडिमा का लेख वर्तन भाव व भूमिबहिटी भाव बाप्ने घाट एण्ड मेटर्स । सं १२ वि १ सन् १९३५

पृ ८७-११ ।

ए डिटेइड एक्सपोजिशन भाव बी भागरी गुजराती एण्ड माडी स्क्रिप्टस एच० घाट कापडिमा का लेख संहारकर ओरिजिनल रिसेर्च इस्टीम्यूट की पत्रिका । भा ११ १

(१९३८) पृ ३८६ ४१८ ।

बेत विन कस्पडुम भूमिका मुनि पुष्य विजय जी ।

प्रहमदावार ।

भारतीय प्राचीन लिपिमाता म म पंडित श्रीराजेंद्र श्रीराजेंद्र प्रोफ़ेस प्रजेमेर ।

भारिजन भाव बी बंगाली स्क्रिप्ट राज्ञामवाध बन्धोपाध्याय ।

कतकता ।

इंडियन पैसियोवाफ्री भाग १ वा राजबली पाण्डेय

काशी ।

बी प्रस्फाबेट बी डिरेक्टर

संघ ।

हिन्दी विश्वकोश का ‘प्रहार’ संघ

कतकता ।

प्रसोक इंस्ट्रुप्शनस इंडिकेक्न्स इन्स

संघ ।

” ” कनिषम

कतकता ।

पुस्त इंस्ट्रुप्शनस जे एफ पलीट

”

प्रसोक की प्रमेतिपित्री प्रोफ़ेस श्यामसुन्दरदास

काशी ।

प्रियवर्धि प्रसस्तव म म रामावतार जमाँ

पटना ।

सेसेबट इंस्ट्रुप्शनस बी सी सरकार,

कतकता ।

कलकुरी इंस्ट्रुप्शनस बी बी मिश्री

उदाकमप

इंडियेपैसियोप्राफी जार्नल स्पूतर ।

इंडियन एष्टीकनेरी ।

'ए प्योरी प्राब बी भोरिजिन प्राब बी नागरी अस्पडाबेट' धामा घाल्सी का बह.
इंडियन एष्टीकनेरी भा २३ पृ २३३ २२१ ।

पैसियोप्राफिक नोट्स मंडारकर प्रधितंशन प्रब में बिष्णु खीताराम मुकनकर
का सेब । पृ ३ ६ ३२२ ।

भाट्ट छाहन्त प्राब पैसियोप्राफी एच धार० कापडिया का सेब जर्नल प्राब
प मुनिवसिटी प्राब बाम्ने घाट एच सेटर्स । सं १२ वि १ सन् १९१८
पृ ८७-११ ।

ए डिटेरड एक्सपोजिशन प्राब बी नागरी भुजराठी एच मोडी रिफ्रैक्टस एच धार
कापडिया का सेब मंडारकर भोरियंटन रिचर्स इस्टीम्यूट की पबिका । भा १९ ६
(१९१८) पृ ३८१ ४१५ ।

बैन बिज कल्पहुम मुमिका मुनि पुष्य विजय बी । महमशाबाब ।

भाखीय प्राबीन सिपिमामा म म पंडित गौरीबंकर हीराचंद घोम्य प्रबधर ।

घोरिजिन प्राब बी बंपासी रिफ्रैक्ट राबामदास बन्धोपाध्याय । कमकटा ।

इंडियन पैसियोप्राफी नाम १ डा राजबसी पाण्डेय काशी ।

बी अस्पडाबेट बी० डिगिराट, लंडन ।

हिन्दी विस्वकोष का प्रघर' धाम्य कसकटा ।

प्रसोक इंसुप्लानम इंडिकेस्म हुस्व लंडन ।

” कनिपय कसकटा ।

जे एच पत्नीट ” काशी ।

की परमैसिपिया घोम्य स्वामसुन्दरदास पटना ।

प्रप्रस्तम म म रामावतार धर्मा पटना ।

इंसुप्लानस डी डी धरकार, कसकटा ।

इंसुप्लानस बी बी मिराधी पटाकमण्ड

इंडियेपेंसियोप्राफी चार्ज स्पूसर ।

इंडियन एण्टीक्वैरी ।

‘ए प्योरी प्राँव बी प्रोरिजिन प्राँव बी नागरी मस्काबेट’ धामा धास्वी का लेख
इंडियन एण्टीक्वैरी भा ३१ पृ २२३ ३२१ ।

पेसियोप्राफिक मोद्स मंडारकर भमिनंदन घंष में विष्णु सीताराम सुकथनकर
का लेख । पृ ३ ६ ३२२ ।

घाउट लाइन्स प्राँव पैसियोप्राफी एच धार कापडिया का लेख वर्नस प्राँव
ए वूनिसिटी प्राँव बाम्बे धार्ट एण्ड सेटर्स । सं १२ वि १ सन् १९३८
पृ ८७-११ ।

ए डिटेल्स एक्सपोजिशन प्राँव बी नागरी मूजरस्वी एण्ड मोडी रिक्लेस एच धार
कापडिया का लेख मंडारकर प्रोरिजेंटल रिसेर्च इंस्टीच्यूट की पत्रिका । भा १६, ३
(१९३८) पृ ३८६ ४१८ ।

बैन चिन कल्पद्रुम मुनिका मुनि पुष्य विजय जी । महामाबाब ।

भाखीम प्राचीन सिपिमासा म म पंडित पौरीचंकर हीराचंद घोस्य प्रथमेर ।

प्रोरिजिन प्राँव बी बंपाली रिक्लेस राखातबास बन्धोपाभ्याम । कसकता ।

इंडियन पेसियोप्राफी भाग १ डा राजबली पाण्डेय काडी ।

बी मस्काबेट जी० शिरियार लंडन ।

हिन्दी विस्वकोष का प्रसर’ शब्द कसकता ।

मसोक इंस्ट्रुप्शन इंडिकेस्स बुल्स लंडन ।

कर्मिषम कसकता ।

बुप्ट इन्स्ट्रुप्शन बे एफ पबीट

प्रबोक की बर्मसिपियाँ घोस्य बयामसुन्धरबास काडी ।

मियबधि प्रदास्तय म म रामाचतार धर्मा पटना ।

सेसेनट इंस्ट्रुप्शन जी सी सरकार कसकता ।

कमचुरी इंस्ट्रुप्शन जी बी मिश्रडी उदाकमभ

स्वामियो या संरक्षकों से (५) हस्तलिखित ग्रंथों के समूह में सलग्न भूमिती से प्रथम प्रनुसंधाकारों से अपने काम के ग्रंथों का पता लगाकर उन्हें उपसम्भ कर लेना चाहिये । जब प्रथम प्रापको मिल गया तो पुस्तकालय वाले प्रापको बतावें कि किन्-किन बातों का प्रापको ध्यान रखना है । जैसे प्राप नेचनस मार्कसीयो दिल्ली में आएँ तो वे बघावों के प्राप उस हस्तलेख या डाक्यूमेन्ट पर कुछ सिद्धियाँ नहीं । विशेष सावधानी से ग्रंथों को उलटेंगे । हस्तलिखित ग्रंथों के कुछ कायम ऐसे होते हैं जो बहुत ही दूटन वाले होते हैं जरा हाथ लगाया कि दूटे । वहाँ पर विविध हस्तलिखित ग्रंथों का काम होता है, वहाँ उन ग्रंथकारों में ऐसे जस्ता ग्रंथों पर पारदर्शी कायम होने पर एक स्या दिया जाता है, जिससे कि वह वहाँ तक हो सके दूटे नहीं और उसे पढ़ भी सिया जाय । लेकिन फिर भी जैसे कि अपने ही वहाँ है सभी इतनी व्यवस्था तो नहीं है, इसलिए वे जर रक्खा है कि प्राप उनको सुरंगें तो वह कायम दूट जायमा और टूट जाने से बड़ी हानि होगी । कभी-कभी वह किनारे से भी दूट जायमा तब उसे जोड़ सिया जा सकता है । कभी-कभी बीच-बीच में से ही उसका हिस्सा फट जाता है । यदि इस प्रकार के हस्तलिखित ग्रंथों को प्राप देखें तो इस बात का बहुत ध्यान रखें कि सफाई से उसे जोसने का प्रयत्न करें कोई एक बीच पीछे से स्याकर उसके सहारे से उसे जोसें क्योंकि यदि हस्तलिखित ग्रंथों को हानि पहुँच जाती है तो वह प्रापकी ही नहीं राष्ट्रीय संपत्ति की भी तथा ज्ञान की भी हानि हो जाती है । प्रथम यह बहुत प्रावश्यक है कि इस तरह की सावधानी रखी जाए कि ग्रंथ को क्षति न पहुँचे । और उसके साथ-साथ यह भी प्रावश्यक है कि उस ग्रंथ पर कुछ सिद्धा न जाए । जो कुछ नोट सिए जाएँ वह प्रथम कायम पर सिये जाएँ । फिर वृसदी कठिनाई हस्तलिखित ग्रंथों के साथ यह है कि उसके पृष्ठ एक दूसरे से चिपक जाते हैं । पुराने जमाने की स्याही के संबंध में धारसी जी ने उस दिन बताया कि उसमें पीछ भी हुआ करता था । गोंद वाले पृष्ठ चिपक जाना करते हैं । और उन चिपके हुए पन्नों को जोसना भी एक कसा है । धारसी जी ने अपने प्रापण में ऐसे ग्रंथों को जोसने की विधि प्रापको बता दी है । ग्रंथों के जोसने में न तो प्रसार उबावने चाहिये और न उसकी स्याही भुस जानी चाहिये । इस बात का भी ध्यान रखने की प्रावश्यकता है और पृष्ठ न दूटे इस बात का भी ध्यान रखने की प्रावश्यकता है । कुछ ग्रंथ तो बिस्व जैसे हुए होते हैं और कुछ पनाकार । इन दोनों प्रकार के ग्रंथों के साथ किंच प्रकार का व्यवहार किया जाय इस बात को व्यवहार करने से पहिले सभी भाँति सोच लेना चाहिये । प्रत्येक रिसर्च स्काटर को उसके लिए एक विधि लिखित कर लेनी चाहिये, जिससे कि उसके प्रसारों को और ग्रंथ का कोई क्षति न पहुँचे । एक और कठिनाई उसकी प्राचा के संबंध में जाती है । क्योंकि प्रथम एक बिस्तृत क्षेत्र में फेंके हुए मिलते हैं । सूर सागर, रामचरित मानस प्रादि कुछ ग्रंथ ऐसे हैं जिनका बिस्तार क्षेत्र बहुत अधिक है । और हर क्षेत्र की सिद्धावत प्रथम-प्रथम है । कोई प्रसार किसी प्रकार लिखा जाता है कोई किसी प्रकार । जैसे धारसी जी से प्रावधान की कि वह इस प्रकार की प्रसारवकी तैयार कर व जो बड़ा प्रयत्न हो । उस प्रसारवकी का एक प्रारम्भिक रूप धारसी जी ने प्रस्तुत कर

स्वामियों या संरक्षकों से (२) हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह में सशान्ति व्यक्तिगत से प्रणवा प्रसूषणकार्यों से अपने काम के ग्रंथों का पता लगाकर उन्हें उपसम्भ कर लेना चाहिए। जब जब आपको मिस गया तो पुस्तकालय वाले आपको बतायें कि किन-किन बातों का आपको ध्यान रखना है। जैसे आप मैसनस चार्कसीबी बिल्ली में जाएं तो वे बतायेंगे कि आप उस हस्तलेख या डाक्यूमेण्ट पर कुछ लिखेंगे नहीं। विशेष सावधानी से पन्नों को उलटेंगे। हस्तलिखित ग्रंथों के कुछ कायम ऐसे होते हैं जो बहुत ही टूटने वाले होते हैं, जरा हाथ स्यामा कि टूट। जहाँ पर विविध हस्तलिखित ग्रंथों का काम होता है, वहाँ उन ग्रंथधारियों में ऐसे सस्ता पन्नों पर पारदर्शी कायम दोमो तरफ सगा दिया जाता है, जिससे कि वह जहाँ तक हो सके टूटें नहीं और उस पड़ भी लिया काम। लेकिन फिर भी जैसे कि अपने ही मही हैं मनी इतनी धनस्वा तो नहीं है इसलिए वे जर रूढ़ा है कि आप उनको सुरक्षित तो वह कामन टूट जायगा और टूट जाने से बड़ी हानि होगी। कमी-कमी वह किनारे से भी टूट जायगा तब उसे मरि दिया जा सकता है। कमी-कमी बीच-बीच में से ही उसका हिस्सा बन जाता है। यदि इस प्रकार के हस्तलिखित ग्रंथों को आप देखें तो इस बात का बहुत ध्यान रखें कि सफाई से उसे जोखने का प्रयत्न करें कोई एक बीच पीछे से लगाकर उसके सहारे से उसे जोखें क्योंकि यदि हस्तलिखित ग्रंथों को हानि पहुँच जाती है तो वह आपकी ही नहीं राष्ट्रीय संपत्ति की भी तथा ज्ञान की भी हानि हो जाती है। अतः यह बहुत प्रावश्यक है कि इस तरह की सावधानी रखी जाए कि ग्रंथ की सति न पहुँचें। और उसके साथ-साथ वह भी प्रावश्यक है कि उस ग्रंथ पर कुछ लिखा न जाए। जो कुछ नोट लिए जाएं वह प्रलय कायम पर लिखे जायें। फिर दूसरी कठिनाई हस्तलिखित ग्रंथों के साथ यह है कि उसके पृष्ठ एक दूसरे से चिपक जाते हैं। पुराने जमाने की स्वाही के संबंध में शास्त्री जी ने उस दिन बताया कि उसमें बीच भी हुमा करता था। बीच वाले पृष्ठ चिपक जाया करते हैं। और उन चिपके हुए पन्नों की जोखना भी एक कला है। शास्त्री जी ने अपने भाषण में ऐसे प्रश्नों की जोखना की विधि आपको बता दी है। ग्रंथों के मुलने में न तो प्रसार उलटने चाहिए और न उसकी स्वाही बूम जानी चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखने की आवश्यकता है और पृष्ठ न टूटें इस बात का भी ध्यान रखने की आवश्यकता है। कुछ ग्रंथ तो बिस्तर जैसे हुए होते हैं, और कुछ पत्राकार। इन बातों प्रकार के ग्रंथों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाय इस बात को व्यवहार करने से पहिले मनी माँति सोच लेना चाहिए। प्रत्येक रिचर्स क्लब्स को उसके लिए एक विधि निश्चित कर लेनी चाहिए, जिससे कि उसके प्रश्नों की और ग्रंथ को कोई हानि न पहुँचें। एक और कठिनाई उसकी भाषा के संबंध में होती है। क्योंकि ग्रंथ एक विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए मिलते हैं। पुराने, समकालीन मानव भाषि कुछ ग्रंथ ऐसे हैं, जिनका विस्तार क्षेत्र बहुत अधिक है। और हर क्षेत्र की विज्ञानक मतलब-प्रलय है। कोई प्रसार किसी प्रकार लिखा जाता है, कोई किसी प्रकार। नैनी शास्त्री जी से श्रावण का कि वह इस प्रकार की प्रसारवली तैयार कर व जो बड़ा प्रयत्न हो। उस प्रसारवली का एक पारस्विक रूप शास्त्री जी ने प्रस्तुत कर

स्वामिया या सरकारी से (२) हस्तलिखित प्रंनों के संग्रह में संलग्न व्यक्तियों से प्राप्त अनुसंधानार्थों से अपने काम के प्रंनों का पता लगाकर उन्हें उपलब्ध कर लेना चाहिये। जब प्रंन प्राप्त हो सके तो पुस्तकालय वाले आपको बतायेंगे कि किन किन बातों का आपको ध्यान रखना है। जैसे आप नेशनल आर्कैजीवो डिप्लोमा में जाएं तो वे बतायेंगे कि आप उस हस्तलेख या डाक्यूमेंट पर कुछ लिखेंगे नहीं। विशेष सावधानी से प्रंनों को उजड़ेंगे। हस्तलिखित प्रंनों के कुछ कागज ऐसे होते हैं जो बहुत ही दृढ़ बनाने वाले होते हैं। जरा हाथ लगाया कि टूटे। जहाँ पर विभिन्न हस्तलिखित प्रंनों का काम होता है, वही उन प्रंनानामों में ऐसे जस्ता प्रंनों पर पारदर्शी कागज होने तक लगा दिया जाता है। जिससे कि वह जहाँ तक हो सके टूटे नहीं और उसे पढ़ भी लिया जाय। लेकिन फिर भी जैसे कि अपने ही यहाँ है, अभी इतनी ध्यान देना ही नहीं है, इसलिए वे डर रहता है कि आप उनको छुएँगे तो वह कागज टूट जायगा और टूट जाने से बड़ी हानि होगी। कभी-कभी वह किनारे से भी टूट जायगा तब उसे जोड़ दिया जा सकता है। कभी-कभी बीच-बीच में से ही उसका हिस्सा छड़ जाता है। यदि इस प्रकार के हस्तलिखित प्रंनों को आप देखें तो इस बात का बहुत ध्यान रखें कि सफाई से उसे धोने का प्रयत्न करें। कोई एक चीज पीछे से लगाकर उसके सहारे से उसे धोने। क्योंकि यदि हस्तलिखित प्रंनों को हानि पहुँच जाती है तो वह आपकी ही नहीं राष्ट्रीय संपत्ति की भी तथा ज्ञान की भी हानि हो जाती है। अतः यह बहुत आवश्यक है कि इस तरह की सावधानी रखी जाए कि प्रंन को खति न पहुँचे। और उसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उस प्रंन पर कुछ लिखा न जाए। जो कुछ नोट लिए जाएं वह प्रतय कागज पर लिखे जायें। फिर दूसरी कठिनाई हस्तलिखित प्रंनों के साथ यह है कि उसके पृष्ठ एक दूसरे से चिपक जाते हैं। पुराने जमाने की स्वाही के संबंध में शास्त्री जी ने उस दिन बताया कि उसमें पौर भी हुआ करता था। पौर जाने पृष्ठ चिपक जाया करते हैं। और उन चिपके हुए पन्नों को धोना भी एक कला है। शास्त्री जी ने अपने भाषण में ऐसे प्रंनों को धोने की विधि आपको बता दी है। प्रंनों के जमाने में न तो प्रखर उलझने चाहिये और न उसकी स्वाही धुल जानी चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखने की आवश्यकता है और पृष्ठ न टूटे इस बात का भी ध्यान रखने की आवश्यकता है। कुछ प्रंन तो बिस्व बँने हुए होते हैं और कुछ पत्राकार। इन दोनों प्रकार के प्रंनों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाय इस बात को व्यवहार करने से पहिले मनी धीरे धीरे लेना चाहिए। प्रत्येक रिजर्व स्काफर को उसके लिए एक विधि निश्चित कर लेनी चाहिए, जिससे कि उसके प्रखरों को और प्रंन को कोई खति न पहुँचे। एक और कठिनाई उसकी भाषा के संबंध में आती है। क्योंकि प्रंन एक निश्चित धेन में लेने हुए मिलते हैं। और साथ-साथ रामचरित मानस पाणि कुच प्रंन ऐसे हैं जिनका विस्तार लेन बहुत अधिक है। और हर धेन की विभाजित प्रसव-प्रसव है। कोई प्रखर किसी प्रकार लिखा जाता है कोई किसी प्रकार। धेन शास्त्री जी से प्रार्थना की कि वह इस प्रकार की प्रखरवली तैयार कर दें ता बड़ा धन्य हो। उस प्रखरवली का एक पाठ्यिक रूप शास्त्री जी ने प्रस्तुत कर

स्वामियों या संरक्षकों से (५) हस्तलिखित प्रबंधों के संग्रह में संसप्त व्यक्तियों से प्रथम प्रमुखताओं से प्रथम काम के प्रबंधों का पता लगाकर उन्हें उपसभ कर लेना चाहिए। अब प्रथम प्रापको मिस गया तो पुस्तकालय वाले प्रापको बतायेंगे कि किन किन प्रापों का प्रापको ध्यान रखना है। अब प्राप नेचमस प्रार्थनीया विस्मी में जाएं तो वे बतायेंगे कि प्राप उस हस्तलेख या डाकपुस्तक पर कुछ लिखेंगे नहीं। बिबाह सामानों से प्रबंधों को समझें। हस्तलिखित प्रबंधों के कुछ काम ऐसे होते हैं जो बहुत ही दृष्टन वाले होते हैं। परा हाथ लगाया कि दृष्टे। जहाँ पर बिबिह हस्तलिखित प्रबंधों का काम होता है, वहाँ उन प्रबंधमार्तों में ऐसे जस्ता प्रसो पर पारसर्षी काम कर लेनी तरह लगा दिया जाता है, बिबसे कि वह जहाँ तक हो सके दृष्टे नहीं और उसे पढ़ भी लिया जाय। लेकिन फिर भी जैसे कि प्रथम ही यहाँ है, प्रभी प्रथमी व्यवस्था तो नहीं है, इसलिए वे जर रूखा है कि प्राप उनको हूरने तो वह काम दृष्ट काममा प्रीर दृष्ट जाने से बड़ी हानि होगी। कभी-कभी वह किनारे से भी दृष्ट काममा एक उसे जोड़ दिया जा सकता है। कभी-कभी बीच-बीच में से ही उसका हिस्सा हूर जाता है। यदि इस प्रकार के हस्तलिखित प्रबंधों को प्राप देखें तो इस बात का बहुत ध्यान रखें कि सफाई से उसे खोलने का प्रयत्न करें कोई एक बीच पीछे से लगाकर उसके सहारे से उसे खोलें क्योंकि यदि हस्तलिखित प्रबंधों का हानि पहुँच जाती है तो वह प्रापकी ही नहीं राष्ट्रीय संपत्ति की भी तथा जान की भी हानि ही जाती है। प्रथम यह बहुत प्रावश्यक है कि इस तरह की सामग्री रखी जाए कि प्रबंध को धति न पहुँचे। प्रीर उसके साथ-साथ यह भी प्रावश्यक है कि उस प्रबंध पर कुछ लिखा न जाए। जो कुछ नोट लिए जाएं वह प्रथम काम पर लिखे जायें। फिर दूसरी कठिनाई हस्तलिखित प्रबंधों के साथ यह है कि उसके पृष्ठ एक दूसरे से बिपक जाते हैं। पुराने जमाने की स्याही के संबंध में प्राप्ती जी ने उस बिब बताया कि उनमें पीर भी हुमा करता था। पीर वाले पृष्ठ बिपक जाया करते हैं। प्रीर उन बिबके हुए प्रबंधों की खोजना भी एक कला है। प्राप्ती जी ने प्रथम प्रापम में इस प्रबंध का खोलने की बिबि प्रापको बता दी है। प्रबंधों के खोलने में न ही प्रथम उपकरण चाहिए प्रीर न उसकी स्याही भुम जानी चाहिए। इस बात का भी ध्यान रखने की प्रावश्यकता है प्रीर पृष्ठ न दूरे इस बात का भी ध्यान रखने की प्रावश्यकता है। कुछ प्रबंध या बिब रबे हुए होते हैं प्रीर कुछ पत्राकार। इन दोनों प्रकार के प्रबंधों के साथ बिब प्रकार का व्यवहार किया जाय इस बात को व्यवहार करने से पहिले सभी जाधि सोच लेना चाहिए। प्रत्येक बिब स्कालर का उमर लिए एक बिबि निश्चित कर लेनी चाहिए, बिबसे कि उसके प्रथमों को प्रीर प्रबंध का कोई धति न पहुँचे। एक प्रीर कठिनाई उसकी प्राप के संबंध में जाती है। क्योंकि प्रथम एक बिबिना प्रथम में खेने हुए मिसन है। प्रीर प्रथम, प्रथमपिठ मानस प्राधि कुछ प्रबंध ऐसे हैं जिनका बिबिना प्रथम बहुत प्रथमिक है। प्रीर हर प्रबंध की बिबिना प्रथम-प्रथम है। कोई प्रथम किना प्रथम मिला जाता है, कोई किसी प्रकार। प्रथम प्राप्ती जी ने प्राप्ती जी की बिब इस प्रकार की प्रथमप्रथमी तैयार कर व तो बड़ा प्रथमिक है। उस प्रथमप्रथमी का एक प्राधिना प्रथम प्राप्ती जी ने प्रथम कर

स्वामियों या संरक्षकों से (२) हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह में संलग्न व्यक्तियों से प्रथम अनुसंधानार्थी से अपने काम के ग्रंथों का पता लगाकर उन्हें उपलब्ध कर देना चाहिये । जब प्रथम भाषको मिल गया तो पुस्तकालय वाले भाषको बतावें कि किम किम बातों का भाषको ध्यान रखना है । जैसे भाषा नेशनल आर्कनीजो हिस्ती में जाएं ता वे बतावें कि भाषा उस हस्तलेख या डाक्यूमेण्ट पर कुछ लिखेंगे नहीं । विशेष सावधानी से पत्रों को उलटेंगे । हस्तलिखित ग्रंथों के कुछ कागज ऐसे होते हैं जो बहुत ही टूटन वाले होते हैं जरा हाथ छुयाया कि टूटे । जहाँ पर बिबिध हस्तलिखित ग्रंथों का काम होता है, वहाँ उन ग्रंथामारों में ऐसे जस्ता पत्रों पर पारदर्शी कागज दोनों तरफ सजा दिया जाता है, जिससे कि वह जहाँ तक हो सके टूटें नहीं और उसे पढ़ भी लिया जाय । लेकिन फिर भी जैसे कि अपने ही महाँ है, अभी इतनी व्यवस्था तो नहीं है, इसलिए ये कर रहुवा है कि भाषा उनको सुर्ये तो वह कागज टूट जायगा और टूट जाने से बड़ी हानि होगी । कभी-कभी वह किमारे से भी टूट जायगा जब उस जाड़ दिया जा सकता है । कभी-कभी बीच-बीच में से ही उसका हिस्सा कूट जाता है । यदि इस प्रकार के हस्तलिखित ग्रंथों को भाषा देखें तो इस बात का बहुत ध्यान रखें कि सफाई से उसे खोलने का प्रयत्न करें कोई एक बीच पीछे से लगाकर उसके सहारे से उसे खोलें क्योंकि यदि हस्तलिखित ग्रंथों को हानि पहुँच जाती है तो वह भाषकी ही नहीं राष्ट्रीय संपत्ति की भी तथा ज्ञान की भी हानि हो जाती है । पर यह बहुत सावधान्य है कि इस तरह की सावधानी रखी जाए कि ग्रंथ को खति न पहुँचे । और उसके साथ-साथ यह भी सावधान्य है कि उस ग्रंथ पर कुछ लिखा न जाए । जो कुछ मोट लिए जाएं वह प्रथम कागज पर लिखे जावें । फिर पुस्तकी कठिनाई हस्तलिखित ग्रंथों के साथ यह है कि उसके पृष्ठ एक दूसरे से बिपक जाते हैं । पुराने जमाने की स्वाही क संबंध में सास्त्री जी ने उस दिन बताया कि उसमें पोंड भी हुआ करता था । पोंड वाले पृष्ठ बिपक जाया करते हैं । और उन बिपक हुए पत्रों को खोलना भी एक कला है । सास्त्री जी ने अपने भाषण में ऐसे पत्रों को खोलने की बिबिध भाषकी बता दी है । ग्रंथों के तुलने में न तो प्रथम उनहने चाहिये और न उसकी स्वाही भूम जानी चाहिए । इस बात का भी ध्यान रखने की सावधान्यता है और पृष्ठ न टूटें इस बात का भी ध्यान रखने की सावधान्यता है । नख जब ता जितर बंधे हुए होते हैं और कुछ पत्राकार । इन दोनों प्रकार के पत्रों के साथ किम प्रकार का व्यवहार किया जाय इस बात को व्यवहार करने से पहिले सगी भाँति सोच लेना चाहिए । प्रत्येक रिक्वर्ड स्कातर को उनके लिए एक बिबिध निरिखत कर लेनी चाहिए, जितके कि उसके प्रसारों को और संभवा का भाँति खति न पहुँचे । एक और कठिनाई जसकी भाषा के संबंध में घाटी है । क्योंकि प्रथम एक बिस्मृत शोध में कने हुए मिलते हैं । गूर चापर, रामचरित मानस धारि काय धर एम ह बिबिध बिगार शन बहुत धरिषण है । और हर शोध की लियारट प्रथम-धरण है । काँ प्रथम बिनी प्रार लिखा जाया है कोई निरी प्रथम । येन सास्त्री जी ने प्रार्थना की कि वह इन प्रथम की प्रारणनी संसार कर द ता बड़ा धरणा हा । उस प्रथमवती का एक धारजिक रूप सास्त्री जी ने प्रस्तुत कर

स्वामियों या संरक्षकों से (२) हस्तलिखित प्रबंधों के संग्रह में सम्मिलित की जाये।
 प्रथम अनुसंधानार्थी से अपने काम के प्रबंधों का पता सजाकर उन्हें उपलब्ध कर लेना
 चाहिये। जब प्रबंध प्राप्त होते हैं तो पुस्तकालय वाले प्राप्त होने के बाद ही
 किन्-किन् बातों का प्राप्त होने का ध्यान रखना है। जैसे प्राप्त होने पर पारदर्शी
 जाएँ तो वे बतायेंगे कि प्राप्त उस हस्तलेख या डाकुमेण्ट पर कुछ सिद्धियाँ नहीं। बिना
 सावधानी से प्रबंधों को उमटेंगे। हस्तलिखित प्रबंधों के कुछ कारण ऐसे होते हैं, जो
 बहुत ही दूटने वाले होते हैं, बरा बरा सजाया कि दूटे। जहाँ पर बिना
 हस्तलिखित प्रबंधों का काम होता है, वहाँ उन प्रबंधों में ऐसे प्रबंधों पर पारदर्शी
 कारण दोनों तरफ सजा दिया जाता है, जिससे कि वह प्रबंध दूटे नहीं और
 उसे पढ़ भी सिया जाय। लेकिन फिर भी जैसे कि प्रबंध ही, प्रधी इतनी
 व्यवस्था तो नहीं है, इसलिए वे हर तरह से कि प्राप्त वह काम
 जायजा और दूट जाने से बड़ी हानि होती। कभी-कभी
 वह उसे जोड़ दिया जा सकता है। कभी-कभी
 जाता है। यदि इस प्रकार के हस्तलिखित प्रबंधों
 ध्यान रखें कि सफाई से उसे खोलने का प्रयत्न कर
 उसके सफाई से उसे खोलें क्योंकि यदि प्रबंध
 वह प्राप्त ही नहीं राष्ट्रीय संपत्ति की भी
 वह बहुत आवश्यक है कि इस तरह की
 और उसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है।
 नाट लिए जाएँ वह प्रथम कारण
 हस्तलिखित प्रबंधों के साथ यह ही
 पुस्तकालय के स्वाधी के
 उसमें और भी सुझाव
 है। और उन बिना
 प्राप्त में ऐसे प्रबंध
 तो पधार उमड़ने
 भी ध्यान

श्री

दिया है, जो उनके भाषण के अन्त के परिशिष्ट में दिया गया है। मैं चाहता था कि यह अक्षरावली आप लोगों के पास रहे, इस अक्षरावली को पूर्णतः उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इसमें कालक्रम और देश भेद दोनों से अक्षर-विकास का अन्तर स्पष्ट किया गया हो। मैं समझता हूँ कि अक्षर-विकास के उपयोग में कुछ कालक्रम भी मिलेंगे कुछ देशक्रम भी मिल जायगा। पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से अक्षर-रूपों की तालिका प्रस्तुत हो जाने पर तो आप यह जान जायेंगे कि जिस प्रकार का अक्षर हमको मिल रहा है वह किस काल अथवा देश से संबंधित है। अतः अक्षरों की यह समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है। जैसे महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद श्रोत्राजी ने प्राचीन लिपिमाला में शिलालेखों की अक्षरमाला ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत की, उसी प्रकार हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की अक्षरावली का इतिहास भी दसवीं ग्यारहवीं शताब्दी से आज तक का प्रस्तुत होना चाहिए। किन्तु जब तक ऐसी प्रामाणिक अक्षरावली तैयार नहीं होती, तब तक आरम्भिक सहायता ऊपर दी गयी अक्षरावली से ली जा सकती है। पर अनुसंधान को स्वयं भी अपना मार्ग निकालना होगा। अक्षरावली कोई शास्त्री जी के पास पहले से तैयार थोड़े ही थी कि जिससे शास्त्री जी पढ़ने लग लए हो। न मेरे पास कोई पहिले से तैयार थी। इस के लिए तो मामान्य बुद्धि ही काम देती है। इसके लिए आवश्यक है कि आप लोग भी हस्तलिखित ग्रंथों का पारायण करें और आवश्यक सूची अपनी बनाते चले जाएँ। सामूहिक उद्योग में भी मैं विश्वास करता हूँ। आप लोग सब अपनी-अपनी अक्षरावली बनाएँ। यह अपनी सूची हमको भेज दें तो इस प्रकार की यह अक्षरावली हम लोग बनाकर के तैयार कर सकते हैं। अभी तो यह आवश्यक है कि किसी ग्रंथ को पढ़ने से पहिले, उस ग्रंथ की अक्षरावली, आप स्वयं तैयार कर लें। यथार्थ में हर ग्रंथ में आपको उसकी एक अलग अक्षरावली मिलेगी। यदि एक ही ग्रंथ में विविध लेख-लिपियाँ मिलती हैं अर्थात् कुछ अक्षर एक लिपिक द्वारा लिखा गया है, और फिर आगे किसी दूसरे की कलम मिलती है तो नोट लेते समय इस बात का भी उल्लेख आवश्यक है कि कितने पृष्ठ एक लेखनी से लिखे हुए हैं और कितने दूसरी से क्योंकि लेखनी भी कभी-कभी पुस्तक की प्रामाणिकता के निर्णय में बहुत योग देती है, और आपको जहाँ पुस्तक देखनी होती है, वहाँ उसकी प्रामाणिकता भी देखनी होती है। इसी प्रकार कहीं-कहीं शब्दों की छूट हो जाय, तो उनको भी आपको उसी प्रकार नोट कर लेना है और अपनी बुद्धि का उपयोग उसमें तब करना है जब उसी प्रकार की और सामग्री आपको मिले। तो यह तैयारी आपको एक हस्तलिखित ग्रंथ के सम्बन्ध में कर लेनी चाहिए। फिर हस्तलिखित ग्रंथ के सबंध में दो-तीन और बातें भी जरूरी होती हैं ग्रंथ के आरम्भ में लेखक या तो अपने उद्देश्य का परिचय देता है मंगलाचरण के बाद। फिर वह पुष्पिका भी आती है जिसमें कि लेखक अपने ग्रंथ के आश्रयदाता का और फिर अपने ग्रंथ का परिचय देता है। परिचय की पुष्पिका में कभी-कभी सन् सवत भी दे देता है। सन् सवत कभी नहीं, भी देता है। फिर उनमें अन्त में भी एक पुष्पिका होती है। अतः की पुष्पिका में भी इसी प्रकार से परिचय देता है, कि कौन इस का लेखक है, किस के कहने से यह लिखी

गई है। क्रिस् के पठनाचं लिखी मयी है और यह ग्रंथ क्व संपूर्ण होता है और क्रिस् सन् सबत में यह संपूर्ण होता है। प्रारंभ में जो मन् सबत दिया जाता है वह प्रायः प्रथम-प्रारंभ करने का होता है और अंत में जो दिया जाता है वह प्रायः ग्रंथ की समाप्ति का होता है। लेकिन इन दोनों को देख कर इस सम्बन्ध में परीक्षा द्वारा निश्चय कर देने की जरूरत है। जब प्राप प्रश्नों के नोट में तो इन परिष्कारों को ध्यान से ध्यान से लेने की आवश्यकता है। फिर प्रश्नार्थ होते हैं। प्रश्नार्थ के अर्थ और अर्थ में भी इस प्रकार की पुष्टि काय्य बहुधा प्रापको मिलती है। वा इस प्रकार से लेखक के सम्बन्ध की उसके निम्नी परिष्कार की वा परिष्कारों उस में मिले और ग्रंथ के अर्थ स सम्बन्ध रखने वाली जो सुचनाएँ प्रापको मिले हस्तलिखित ग्रंथों के नोट सते समय उन सुचनाओं को भी पर्याप्त महत्त्व दे और उनको भी नोट कर लें। रचना संशुद्ध के साथ-साथ लिपि संशुद्ध भी बनाने करने वाला हो देना है। क्रिस् के लिए वह प्रतिनिधि की पत्नी इस का भी उल्लेख रखा है। इन सब को लिख लेना चाहिए। चूंकि ग्रंथ की प्रामाणिकता के लिए वे सभी सुचनाएँ भी बहुत आवश्यक हुमा करती है। तो इन सब बातों के बाद रचना सभ्य के सम्बन्ध में प्राप का ध्यान इस बात की ओर दिखाना चाहता हूँ कि रचना सबत जो प्राप अधिकांश रचना में लिखते हैं वे अर्थ में नहीं मिलते अर्थों में मिलते हैं। इसी लिए उन अर्थों की अपने पास एक सूची होनी चाहिए कि क्रिस् ग्रंथ के लिए कौन कौन से अर्थ प्रयोग किए जा सकते हैं। ऐसी एक सामान्य सूची बना ली जा सकती है। हालांकि कभी-कभी विशिष्ट प्रयोग भी मिलेंगे। उस विशिष्ट के लिए विशेष उपाय करना पड़ेगा। फिर भी यदि एक सामान्य सूची प्रापके पास बनी हुई होना तो वह निश्चय ही बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। इनके लिए महामहोपाध्याय गौरी चकर हीराचंद घोष्य जी की प्राचीन लिपि भासा से एक सूची यहाँ इस भाग्य के परिशिष्ट रूप में दी जा रही है। और यह वा बताया ही जा चुका है कि ऐसे अर्थों में प्रश्नों नाम नाम ना पति। प्रश्नों की समझी पति हानी है सीधी तरफ से बाई तरफ का पढ़ पड़े जाते हैं। बाई व सीधी तरफ नहीं पड़े जाते। व १६६२ लिपिता है तो २ पहिले पाएगा ६ बाद में पाएगा उसके बाद फिर ६ पाएगा। एक सबक बाद में पाएगा। इस तरह से फिर उसको उलट कर पढ़ जाते हैं। हस्तलिखित ग्रंथों में कभी-कभी अधिष्ठ विधियाँ रहनी हैं। अतः विधियाँ की प्रामाणिकता परीक्षा द्वारा बिना को जानी चाहिए। इनके लिए एक धारणा उपयुक्त प्रय मिलता है। उसका नाम है 'नियम ऐकोमरीय'। इनकी सहायता से अर्थों की अर्थ पथना से ऐतिहासिक अर्थों का अर्थ व भाषा के रूप में तथा और भी कई विधियाँ से प्रामाणिकता निर्धारित की जा सकती है।

परिशिष्ट

(क)

कुछ वे ग्रथागार जिनमें हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथ विशेष सग्रहीत है

- १ क० मु० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ।
- २ काशी नागरी प्रचारिणी सभा ।
- ३ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
- ४ हिन्दुस्तानी एकाडमी, प्रयाग ।
- ५ नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा ।
- ६ लक्ष्मी जैन पुस्तकालय, बेलनगज, आगरा ।
- ७ राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जोधपुर ।
- ८ शोध-संस्थान, उदयपुर विद्यापीठ, उदयपुर ।
- ९ विद्या-विभाग, काकरौली ।
- १० जालान पुस्तकालय, कलकत्ता ।
- ११ खुदावरुश लाइब्रेरी, पटना ।
- १२ जैन भंडार, जयपुर ।
- १३ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर ।
- १४ अभय जैन पुस्तक भंडार, नाहटो की गवाड, बीकानेर ।
- १५ व्रज साहित्य मंडल, मथुरा ।
- १६ वृंदावन के मंदिरों के ग्रथ-भंडार ।
- १७ बिहार राष्ट्रभाषा, परिषद, पटना ।

(ख)

कुछ वे खोज रिपोर्टें जिनमें हिन्दी के ग्रथो का उल्लेख है

- १ कैटालोगस कैटालैगोरम, टसीटरी ।
- २ हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज के विवरण (सन् १९००) से काशीनागरी प्रचारिणी सभम काशी ।
- ३ राजपूताने में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज (३ खंड), उदयपुर विद्यापीठ, उदयपुर ।
- ५ मत्स्यप्रदेश में हिन्दी-साहित्य—(शोध प्रवच)—राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर ।
- ६ हिंदी हस्तलिखित पुस्तको का विवरण—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना ।

(ग)

वह ग्रथ जिनसे मन-सबत् और तारीखो की प्रामाणिकता जाची जा सकती है—दीवान वहादुर स्वामी कन्नू पिल्लै की 'इंडियन एफीमेरीज' ।

(५)

कुछ उन व्यक्तियों के नाम जिनसे हस्तलिखित ग्रंथों के संग्रह में विशेष सूचनाएँ मिल सकती हैं । १ श्री धनरत्न नाहुटा नाहुटों की यवाड़ बीकानेर । २ प जवाहरलाल जतुबेदी कुंदाबादी पसी मयूर । ३ उपयत्नकर शास्त्री क मु हिन्दीविद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय आगरा । ४ पी कच्छमणि शास्त्री विद्याविभाम काकरीली । ५ कैप्टेन मूरवीरसिंह, एडीसनस मजिस्ट्रेट मुम्बईशहर ।

(६)

प्राचीन सिधि माता' से उद्धरण प्रकों के लिए शम्बावती

ये सांकेतिक शब्द मनुष्य के प्रिय सुखों प्रथवा उनके चरनों के प्रसर देवता साहित्य के प्रय ग्रह नक्षत्र भाषि एवं संसार के प्रत्येक निश्चित पदार्थों की संख्या पर से कल्पित किये गये हैं । प्रत्येक नाम के लिए संस्कृत भाषा में प्रत्येक शब्द होने से प्रत्येक संख्या के लिए कई शब्द मिलते हैं जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं ।

—मूल्य व गणन प्राकाश संतर प्रभ विमर् म्योम अंतरिक्ष तन पूर्ण रंभ भादि ।

१—प्राणि शक्ति ईशु, विष्णु चन्द्र शीतलसु शीतलरिम सोम प्रकाश मुर्चासु, प्रम्व नू मूनि शक्ति धरा उर्वरा सो वसधरा पृथ्वी क्षमा धरणी ममुका इला नु मही रूप पितामह नामक तनु प्रादि ।

२—यम यमस अधिपत नामस्य वस सोचन नेत्र अधि दृष्टि वज्र मयन ईश्वर पशु बाहु कर कर्ण कच प्रोष्ठ मूल्य जानु, जपा इय ईश मृगम मूम प्रयग कृद् व रविचन्द्रा प्रादि ।

३—राम गुण त्रिमुख लोक त्रिधनुस् मृगम काल विकास त्रिवत त्रिनेत्र सहोदरा प्रगित बन्धि पादक बंधवानर बहूत तपन हुताशन ज्वलन मिश्रित कृष्णान् होतु प्रादि ।

४—वैद श्रुति समुद्र भासर, प्रथिज जसमि उदधि जलजिनि प्रंनुमि केन्द्र कर्ण प्राथम मृग तुर्य इत प्रय प्राय विष् विद्या बंध कोष्ठ बर्ष प्रादि ।

५—बाण धर मावक इषु मूल पर्व प्राण पाठन प्रर्ष विष्म महाभूत तन्व, इक्षिभ रत्न प्रादि ।

६—रम धन नाम प्रानु, मामार्थ दर्शन राव प्ररि प्रासन तर्क शारक प्रादि ।

७—तण धन भूमन् पर्वत धन प्रादि मिदि श्रुति मुनि प्रादि वार स्वर प्राणु प्ररत तरन प्रादि वार पी प्रमत्र प्रादि ।

१ ये सूचिका पूर्ण तन्त्री पर धारम में श्लोकार्थ का सहायक हो सकती है । वह इनके धारम करके प्राय पगनी प्रावश्यकतानुसार और नाम बडा सकता है ।

२ भारतीय प्राचीन सिधि माता से रामकृतानुर प्रथिज शीतलचकर हीरापत्र प्राया नुमरा लक्ष्मण वि मं १६७४ पृ १२ — १२४ ।

८ = वसु, अग्नि, नाग, गज, दत्ति दिग्गज, हस्तिन, मातंग, कुजर, द्विप, सर्प, तक्षसिन्धि, भूति, अनुष्टुभ, मंगल, आदि ।

९ = अक, नूद, निधि, ग्रह, रघ्न, छिद्र, द्वार, गो, पवन, आदि ।

१० = दिश, दिशा, आशा, अगुलि, पक्ति, ककुभ, रावणशिरम, अवतार, कर्मन् आदि ।

११ = रुद्र, ईश्वर, हर, ईस, भव, भर्ग, हूलिन, महादेव, अक्षौहिणी, आदि ।

१२ = रवि, सूर्य, अर्क, मार्तंड, धूमणि, भानु, आदित्य, दिवाकर, मास, राशि, व्यय आदि ।

१३ = विश्वेदेवा, काम, अतिजगती, अघोष, आदि,

१४ = मनु, विद्या, इद्र, शक्र, लोक, आदि ।

१५ = तिथि, धर, दिन, अहन्, पक्ष, आदि ।

१६ = नृप, भूप, भूपति, अष्टि, कला आदि ।

१७ = अत्यष्टि, १८ = धृति,

१९ = अतिधृति २० = नख, कृति

२१ = उत्कृति, प्रकृति, स्वर्ग २२ = कृती, जाति

२३ = विकृति २४ = गायत्री, जिन, अर्हन्त् सिद्ध आदि ।

२५ = तत्व २७ = नक्षत्र, उडु, भ, आदि

२२ = दत्त, रद, आदि ३३ = देव, अमर, त्रिदश, सुर आदि

४० = नरक ४८ = जगती

४९ तान

इस प्रकार शब्दों से अक बतलाने की शैली बहुत प्राचीन है । वैदिक साहित्य में भी कभी कभी इस प्रकार से अक बतलाने के उदाहरण मिल जाते हैं जैसे कि शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मणों में ४ के लिए "कृत" शब्द कात्यायन और लाट्यायन श्रौतसूत्रों में २४ के लिए गायत्री और ४८ के लिए जगती और वेदांग ज्योतिष में १, ४, ८, १२ और २७ के लिए क्रमशः रूप "अय" "गुण" "युग" और "भसमूह" शब्दों का प्रयोग मिलता है, पिंगल के छंद सूत्र में तो कई जगह अक इस तरह दिए हैं । "मूलपुलिश सिद्धांत" में भी इस प्रकार के अकोका होना पाया जाता है । वराहमिहिर की "पंचसिद्धांततिका ई० स० ५०५, ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुटसिद्धांत, ६ (ई० स० ६२८), लल्ल के शिष्यधोवृद्धिद, (ई० स० ६३८, के आस पास) में तथा ई० स० की सातवीं शताब्दी के पीछे के ज्योतिष के आचार्यों के ग्रन्थों में हजारों स्थानों पर शब्दों से अक बतलाये हुए मिलते हैं और अब तक संस्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं के कवि कभी-कभी अपने ग्रन्थों की रचना का सबत् इसी शैली से देते हैं, प्राचीन शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों में भी कभी-कभी इस शैली से दिये हुए अक मिल जाते हैं ।

मि० के ने भारतीय गणित शास्त्र नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि शब्दों में अक प्रकट करने की शैली, जो असाधारण रूप से लोक प्रिय हो गई और अब तक

पुस्तकाध्ययन तथा सामग्री निबन्धन

शोध के सिद्धान्त, शोध-विषय के चयन आदि के विषय में आप पिछले २-३ दिन में पर्याप्त सुन चुके होंगे। शोध की विशेषता भी आपको विदित होगी। शोध निबन्ध अन्य निबन्धों से भिन्न होता है अतएव उसके लिए पढ़ने की पद्धति, नोट्स लेने की पद्धति आदि भी भिन्न होती हैं। शोध निबन्ध को सर्वप्रथम thorough होना चाहिए अर्थात् शोधकर्ता को अपने सीमित विषय में तब तक का हुआ सम्पूर्ण ज्ञान सकलित करना है और उसे अपने निबन्ध में यथोचित प्रयुक्त करना है। हमारे शोधप्रबन्ध का प्रत्येक वाक्य responsible (प्रमाणित) होना चाहिए। कोई भी ऐसा तथ्य न हो जिसके पीछे प्रमाणों का स्तम्भ न हो अतएव प्रत्येक विशेष नूतन कथन की पुष्टि तथ्यों से तथा उल्लेखों से करनी होती है और स्रोत को पाद टिप्पणी में देना होता है। अतएव शोधकार्य में सर्वत्र व्यापकता तथा accuracy चाहिए और इस के लिए उपयुक्त साधनों को अपनाना चाहिए—जैसे ठीक ढग से नोट्स उतारना, ठीक ढग से पुस्तक सूची बनाना तथा ऐसे कार्य करना कि समय का पूरा-पूरा उपयोग हो सके।

इस और पुस्तकाध्ययन की महत्ता स्पष्ट है। किन्तु कुछ लोग कभी-कभी ऐसे मिल जाते हैं जो शोधकार्य तो कर रहे हैं किन्तु अपने से पहले किये कार्य को जिन्होंने पूरा-पूरा नहीं पढ़ा है। वे दावा करते हैं कि वे clean slate से कार्य कर रहे हैं और वे मौलिक शोध करेंगे। किन्तु ये इनकी भूल है। मनुष्य इतनी उन्नति इसी कारण कर सका है कि प्रत्येक मनुष्य अपने पूर्वजों के अनुभवों को काम लाता है। जहाँ वे छोड़ गए थे उससे आगे चलता है। पूर्वकृत कार्य को न पढ़ कर मौलिक शोधकर्ता (1) कभी कभी ऐसे परिणाम निकाल देता है जो साधारणतः पहले अनेकों द्वारा निकले हुए थे या ऐसी पद्धति से कार्य करता है जो अब out of date अथवा अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुकी है। अतएव प्रत्येक शोध के विद्यार्थी को अपने से पहले किए शोधकार्यों का गम्भीर पठन व मनन करना चाहिए। इससे यह लाभ होगा कि पहली की सुलझी उलझनों को फिर से सुलझाना न पड़ेगा, पूर्वकृतों ने किस किस सामग्री को अपनाया, किन प्रणालियों को प्रयुक्त किया, किन परिणामों पर वे पहुँचे—ये सब सम्मुख समस्या को हल करने में सहायक होंगे और शोधकर्ता ज्ञात से अज्ञात के मार्ग पर कुछ आगे तक देख सकेगा और फिर अन्वयस्त हो निज का मार्ग बना सकेगा।

प्रपमित है ई स की नबी सताम्बी के पास पास संभवत पूर्व की घोर से इस देश में प्रकृत हुई (पृ ३१) मि के का यह कथन भी सर्वथा विरवाह योग्य नहीं है क्योंकि बहिक काल से सभा कर ई स की सतबी सताम्बी तक के संस्कृत पुस्तकों में भी इस सीपी ने किये हुए धोंका के हजारों उदाहरण मिलते हैं। यदि मि के ने ब्राह्मिहिर की पंचसिद्धांतिका को ही पढ़ा होता तो भी इस सीपी क प्रसन्न उदाहरण मिल जाते।

प्रकारों से धक बतझाने की भारतीय क्षेपी

ज्योतिष धारि के स्तोत्रबद्ध ग्रन्थों में प्रत्येक धक के लिए छब्ब लिखने के विस्तार बढ जाता था जिसको संक्षेप करने के लिए धसरो से धक प्रकट करने की रीतियाँ निकाली गई। उपलब्ध ज्योतिष के ग्रन्थों में पहले पहिल इस सीपी से दिये हुए धक "धार्पमठ प्रथम" के धार्पमठीय धार्प सिद्धान्त में मिलते हैं जिसकी रचना ई स ४९९ में हुई थी। उक्त पुस्तक में धसरो से धक नीचे सिधे अनुवार बतसाये हैं।

क=१	ख=२	ग=३	घ=४	ङ=५	च=६	ज=७	झ=८	ञ=९
टा=१	ठ=११	ड=१२	ढ=१३	ण=१४	त=१५	थ=१६	द=१७	ध=१८
न=१९	प=२०	फ=२१	ब=२२	भ=२३	म=२४	य=२५	र=२६	ल=२७
व=२८	श=२९	ष=३०	स=३१	ह=३२	॰=३३	॰=३४	॰=३५	॰=३६
॰=३७	॰=३८	॰=३९	॰=४०	॰=४१	॰=४२	॰=४३	॰=४४	॰=४५
॰=४६	॰=४७	॰=४८	॰=४९	॰=५०	॰=५१	॰=५२	॰=५३	॰=५४
॰=५५	॰=५६	॰=५७	॰=५८	॰=५९	॰=६०	॰=६१	॰=६२	॰=६३

इस सीपी में स्वरों में ह्रस्व-दीर्घ का भेद नहीं है। व्यंजन के साथ जहाँ स्वर मिला हुआ होगा है वही व्यंजनमूक धक को स्वरमूक धक के बुझना होता है और संमुक्त व्यंजन के साथ जहाँ स्वर मिला होगा है वहाँ उक्त संमुक्त व्यंजन के प्रत्येक बटक व्यंजन के ज्ञान बही माना जाता है जिससे प्रत्येक व्यंजन मूक धक को उक्त स्वर के मूक धक से मूक कर बुझनकन जोडना पड़ता है। इस सीपी में कभी-कभी एक ही सख्या मिला धसरो से भी प्रकट होती है। ज्योतिष धारियों के लिए धार्पमठ की यह सीपी बहुत ही लक्षित प्रभाव बोझे धसरो में धार्पिक धक प्रकट करने वाली थी परन्तु किसी पन्धरे मखक ने इसको धपनाया नहीं और न यह सीपी धार्पिक सिद्धांतों तथा धार्पमठों में मिलती है जिसका कारण इसके धसरो का कर्मक्यु होना हो धपना धार्पमठ के धूपमनवादी होने से धार्पिक सिद्धांतों ने उसका पहिन्कार किया है।

धार्प मठ "दुमरे" ने जो सत्त धीर ब्रह्मपुत्र के पीछे दरलु धास्करानार्थ से पूर्व प्रभाव ई स की ११ वी सताम्बी के पास पास हुआ धपन धार्पसिद्धात में १ से ९ तक के धक धीर धून के लिए नीचे सिधे धधर माने हैं।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
क ट प य	ग ङ फ र	ग ङ प ल	ष ड भ व	उ ण म् श	च् त् प्	छ न् ग	त् द् ह	क् प् [ळ]	ज न्

इस क्रम में केवल व्यंजनो ने ही प्रकट स्थिति होते हैं, स्वर निरप्रकृत या सूक्ष्म-सूत्रक समझे जाते हैं और न्युक्त व्यंजन के घटक व्यंजनो में से प्रत्येक से एक-एक अक्षर प्रकट होता है। मरुहृत लेखकों की शब्दा से प्रकट प्रकट करने की सामान्य परिपाटी यह है कि पहले मन्द से इकाई दूसरे से दहाई, तीसरे से सैंकडा आदि प्रकट सूचित किये जाते हैं। "प्रधानां वामतो गति" परन्तु आर्यभट ने अपने इस क्रम में उक्त परिपाटी के विरुद्ध प्रकट वतलाये हैं, अर्थात् पश्चिम अक्षर से इकाई, उपात्य से दहाई। इस क्रम में १ का प्रकट क, ट, प, या ा अक्षर से प्रकट होना है जिससे इसको "कटप-यादि" क्रम कहते हैं।

कनी-कमी शिलालेखों, दानपत्रों, तथा पुस्तका के मवत् लिखने में यह "कटप-यादि" क्रम से दिये हुए मिलते हैं, परन्तु उनकी और आर्यभट "दूसरे" की उपर्युक्त शैली में इतना अन्तर है कि उनमें "अक्षरानां वामतो गति" के अनुसार पहिले अक्षर से इकाई, दूसरे से दहाई आदि के प्रकट वतलाये जाते हैं, और न्युक्त व्यंजनो में केवल अन्तिम व्यंजन प्रकट सूचक होता है, न कि प्रत्येक व्यंजन।

ऊपर वर्णन की हुई अक्षरों से प्रकट सूचित करने की शैलियों के प्रतिरिक्त दक्षिण में मलाबार और तेलुगु प्रदेश में पुस्तकों के पत्राक लिखने में एक और भी शैली प्रचलित थी जिसमें क मे ङ तक के अक्षरों से क्रमशः १ से ३४ तक के प्रकट फिर वारखडी (द्वादशाक्षरी) के क्रम से का से ङ, तक आ की मात्रा सहित व्यंजनो से क्रमशः ३५ से ६८ तक, जिसके बाद कि से ङ तक के इ की मात्रा सहित व्यंजनो से ६९ से १०२ तक के और उनके पीछे के प्रकट ई, ०० उ, आदि स्वर सहित व्यंजनो से प्रकट किये जाते थे। यह शैली शिलालेख और ताम्रपत्र आदि में नहीं मिलती।

अक्षरों से प्रकट करने की रीति आर्यभट प्रथम ने ही प्रचलित की हों ऐसा नहीं है क्योंकि उससे बहुत पूर्व भी उसके प्रचार का कुछ-कुछ पता लगता है। पाणिनि के सूत्र १ ३ ११ पर के कात्यायन के वार्तिक और कथं के दिए हुए उसके उदाहरण से पाया जाता है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में अधिकार "स्वरित" नामक वर्णात्मक चिन्हों से वतलाये गये थे और वे वर्ण पाणिनि के शिवसूत्रों के वर्णक्रम के अनुसार क्रमशः सूत्रों की संख्या प्रकट करते थे अर्थात् अ=१, इ=२, उ=३ आदि।

{ अध्याय ।
परिशिष्ट ।
पुस्तकसूची ।
अनुक्रमणिका ।

फुटनोट (पादटिप्पणी)—पृष्ठ के पाद में ।

इन में द्वितीय अन्तर्पृष्ठ से पुस्तक सूची कार्ड बनाने के लिए पूर्ण सूचना मिल जाती है ।

प्राक्कथन आमुखादि को भी पढ़ लेना चाहिए मामूली तौर से विषयसूची से विदित हो जाएगा कि पुस्तक कहाँ तक शोध के लिए उपयुक्त है । जिन अध्यायों से लाभ हो उनके नोट्स ले लेने चाहिए ।

पुस्तक सूची से अपने Bibliography cards बनाएंगे अतएव यह एक महत्त्वपूर्ण अंग है ।

अनुक्रमणिका की साधारणतया पाठक उपेक्षा करते हैं किन्तु यदि अनुक्रमणिका अच्छी हो तो इस से बढकर कोई भाग उपयोगी नहीं है । अपने विषय के विविध पाठ्य विषय अनुक्रमणिका में देखें, पृष्ठ नोट किया और उपयुक्त अंश पढ़ डालें । यदि समयभाव हो तो अनुक्रमणिका से ही पढना चाहिए ।

फुटनोट (पाद टिप्पणी) यद्यपि पाद की टिप्पणी होने के कारण गौण महत्त्व के माने जाते हैं किन्तु शोध के विद्यार्थी के लिए ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । फुटनोट दो प्रकार के होते हैं ।

(अ) व्याख्या देने के लिए—जिन में लेखक अपने स्वतन्त्र विचारों का, सम्बद्ध विषय का, उसी विषय के उच्च गम्भीरतर विचारों का अथवा सम्बद्ध प्रश्नों का संकेत देता है । साधारण पाठक के लिए ये बेकार हैं किन्तु शोध के विद्यार्थी को ये कभी-कभी नई सूझ दे देते हैं ।

(आ) सूचना का स्रोत देने के लिए—ये फुटनोट शोध के विद्यार्थी के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं । फुटनोट, मुख्य लेख में आए यदाकदा उल्लेख और पुस्तक-सूची ये—ही शोध के विद्यार्थी के कार्य को आगे बढ़ाती हैं । इन से आगे अध्ययन करने के लिए संकेत मिलते हैं और पुस्तकसूची-कार्ड बढते जाते हैं । फुटनोट में स्रोत का पूरा विवरण भी मिल जाता है यथा-लेखक का नाम पुस्तक का नाम आदि । सर्वप्रथम उल्लेख में प्रकाशकादि का नाम, संस्करणदि भी होता है (यदि वहाँ न मिले तो अन्त में पुस्तक सूची देखिए) ।

अंग्रेजी की पुस्तकों में फुटनोटों में कुछ ऐसे संक्षेप चिह्न मिलते हैं जिन के पहले से न जानने पर कठिनाई आ पड़ती है । सुबोधता के लिए वे नीचे दिए जा रहे हैं—

संख्याओं के पूर्व

p = page pp = pages

l = line ll = lines

पुस्तकें तथा उनके अंग

घोषकार्य में उन विद्याभिया का जिनका काय विज्ञान की प्रयोगशाला अ नहीं है पुस्तकों का पढ़ना सबसे बड़ा कार्य है क्योंकि घोष गामत्री का मुख्य साधन पुस्तक-बद्ध ज्ञान है। किन्तु पुस्तकबद्ध ज्ञान का इच्छा साधन प्रकार से कई श्रेणियों में बद्ध हो जा सकती है जिनमें मुख्य ये हैं—

(क) पुस्तकें—एक या अनेक सत्रकों से सिधी।

पुस्तकें—मूल और अनुवाद सहित।

पुस्तकें—सम्पादित।

(ख) परिष्कार—प्राथमिक मासिक त्रिमासिक त्रैमासिक आनुमासिक अर्धवार्षिक वार्षिक।

(ग) समाचारपत्र—दैनिक साप्ताहिक।

(घ) वित्तिय प्रकाशन—बुसेटिन।

पम्फलेट।

कायविरण Proceedings (प्रासीडिंग)।

विबरण Reports (रिपोर्ट)।

(ङ) शोध विवरणोपाधि (Reference books) सम्बन्धन।

पुस्तकों के निम्नलिखित मुख्य अंग हैं —

मुखपृष्ठ

अन्तर्पृष्ठ प्रथम—(बिम्ब के पृष्ठ के बाह) पुस्तक का नाम।

अन्तर्पृष्ठ प्रथम के पीछे—रिक्त स्थान।

(अथवा उही सेखन्द प्रथमात्मा यादि की अन्य पुस्तकों की सूची)।

अन्तर्पृष्ठ द्वितीय—प्रकाशन भाषा (अथ से ऊपर)।

पुस्तक का नाम।

(संक्षिप्त व्याख्या)।

लेखक का नाम।

संस्करण।

प्रकाशन

(प्रकाशन वर्ष-सूत्र)।

अन्तर्पृष्ठ द्वितीय के पीछे—पीछे मुद्रक (अथस्य)।

प्रकाशन वर्ष-सूत्र।

संस्करण प्रकाशित पुस्तक संख्या।

बैठ।

{ प्राक्कथन सामुदायिक।

{ विषयसूची।

{ सूचिका।

{ अध्याय ।
{ परिशिष्ट ।
{ पुस्तकसूची ।
{ अनुक्रमणिका ।

फुटनोट (पादटिप्पणी)—पृष्ठ के पाद में ।

इन में द्वितीय अन्तर्पृष्ठ से पुस्तक सूची कार्ड बनाने के लिए पूर्ण सूचना मिल जाती है ।

प्राक्कथन आमुखादि को भी पढ़ लेना चाहिए मामूली तौर से विषयसूची से विदित हो जाएगा कि पुस्तक कहाँ तक शोध के लिए उपयुक्त है । जिन अध्यायों से लाभ हो उनके नोट्स ले लेने चाहिए ।

पुस्तक सूची से अपने Bibliography cards बनाएँ अतएव यह एक महत्त्वपूर्ण अंग है ।

अनुक्रमणिका की साधारणतया पाठक उपेक्षा करते हैं किन्तु यदि अनुक्रमणिका अच्छी हो तो इस से बढकर कोई भाग उपयोगी नहीं है । अपने विषय के विविध पाठ्य विषय अनुक्रमणिका में देखें, पृष्ठ नोट किया और उपयुक्त अंश पढ़ डालें । यदि समयभाव हो तो अनुक्रमणिका से ही पढ़ना चाहिए ।

फुटनोट (पाद टिप्पणी) यद्यपि पाद की टिप्पणी होने के कारण गौण महत्त्व के माने जाते हैं किन्तु शोध के विद्यार्थी के लिए ये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । फुटनोट दो प्रकार के होते हैं ।

(अ) व्याख्या देने के लिए—जिन में लेखक अपने स्वतन्त्र विचारों का, सम्बद्ध विषय का, उसी विषय के उच्च गम्भीरतर विचारों का अथवा सम्बद्ध प्रश्नों का संकेत देता है । साधारण पाठक के लिए ये बेकार हैं किन्तु शोध के विद्यार्थी को ये कभी-कभी नई सूझ दे देते हैं ।

(आ) सूचना का स्रोत देने के लिए—ये फुटनोट शोध के विद्यार्थी के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं । फुटनोट, मुख्य लेख में आए यदाकदा उल्लेख और पुस्तक-सूची ये—ही शोध के विद्यार्थी के कार्य को आगे बढ़ाती हैं । इन से आगे अध्ययन करने के लिए संकेत मिलते हैं और पुस्तकसूची-कार्ड बढते जाते हैं । फुटनोट में स्रोत का पूरा विवरण भी मिल जाता है यथा-लेखक का नाम पुस्तक का नाम आदि । सर्वप्रथम उल्लेख में प्रकाशकादि का नाम, संस्करणदि भी होता है (यदि वहाँ न मिले तो अन्त में पुस्तक सूची देखिए) ।

अंग्रेजी की पुस्तकों में फुटनोटों में कुछ ऐसे संक्षेप चिह्न मिलते हैं जिन के पहले से न जानने पर कठिनाई आ पड़ती है । सुबोधता के लिए वे नीचे दिए जा रहे हैं—

संख्याओं के पूर्व

p = page pp = pages

l = line ll = lines

संख्या के पश्चात्

f ff विषय घासे चल रहा है

अन्य

cf c (circa)-approximate (data)

cp Sic

qv

lc loc cit = in the place cited. In the passage last referred to same source if other references intervene.

Op cit (= the work cited)

Ibid (Ibidem = Same) Successive ref. to same Source

Supra

Infra

पुस्तकों का पढ़ना

बोध विद्यमान की पूर्ण योजना को ध्यान में रखते हुए निर्देशक के निर्देशानुसार कठोर पुस्तकों को प्राथम्यपुस्तकों मानकर पढ़ना चाहिए और घास बताए इन से नोट्स लेने चाहिए व पुस्तक सूची कार्ड Bibliography cards बनाने चाहिए। कभी-कभी Encyclopedia या किसी प्रमुख लेख (जिस में उल्लेख देय है) को लेकर भी चला जा सकता है। एक बार विषय पकड़ में आ गया तो पुस्तक सूची कार्ड Bibliography cards बढ़ते जाँने और यितना उन्हें पढ़ने उतने उल्लेख और विषय आएँ और कार्य चल निकलेगा।

घटएव सर्वप्रथम किसी एक पुस्तक पढ़ने का निश्चय कर निम्नलिखित वस्तुएँ घपने पास रखें —

- १ (घ) (Blank Bibliography cards) रिक्त पुस्तकसूची कार्ड घ
- (घा) उमकी (Index file) उमसूचक फाइल
- २ (घ) नोटस लेने के लिए कागज
- (घा) उन की (Index file) उम सूचक फाइल
- ३ एक (Index file) विषय नमानुसार उमसूचक फाइल

पुस्तक सूची कार्ड बनाना

यह हम घभी बता घाए है कि पुस्तकालय में या अथवा पुस्तकालयन करते समय घारे पुस्तक-सूची कार्ड (विभिन्न रस के जैसा कि घापने निर्दिष्ट किया हो) घबल घाप के पास होने चाहिए। वही कही घाप को पढ़ते समय किसी अथ पुस्तक का या अथ लेख का (चाहूँ यह पत्रिका समाचार पत्र पैम्फलेट घादि कही हो) उल्लेख घाए घाप उस का कार्ड घबल बनाना में। इस प्रकार घाप के Bibliography cards (पुस्तक सूची कार्ड)

लेख-परिचय

- (घ) लेखक का नाम
 पत्रिका 'लेख का शीर्षक' (शेनों घोर quotation Commas क प्रन्धर)
 पत्रिका का नाम
 वर्ष (Volume) पृष्ठ पृष्ठ
 (दिनांक) (सेट के)
- (घा) लेखक का नाम (यदि हो)
 पत्रिका का नाम (यदि व्यक्तिक का न हो)
 'शीर्षक'
 प्रकाशन नाम (Bulletin, Proceeding pamphlet series)
 प्रकाशन संस्था issued by
 वर्ष पृष्ठ पृष्ठ
 (दिनांक)

लेख-समाचार पत्र

- लेखक का नाम (यदि हो)
 'शीर्षक' [यदि शीर्षक न हो तो बना सीबिए] घोर बड़े बंकेट में
 रखिए ।
 समाचार पत्र का नाम (संस्करण सीकम डाक)
 दिनांक पृष्ठ कासम

लेख-महाकोषादि

- लेखक का नाम
 'शीर्षक'
 पत्रिका नाम (संस्करण)
 वर्ष पृष्ठ पृष्ठ

कार के दिन स्थान में उपरिनिमित्त सूचनाओं में स भी उन्मेष में मिल सकें
 भर हैं । सेव सूचना तक भर में जब उस सेव का या पुस्तक को स्वयं पढ़ें ।

पुस्तक सूची तक हा रन के ही तो प्रच्छ है—एक लखेर सुनरा किसी भी हलके
 रम रा । पुस्तकों के डाई मदेर कर बताए जाएँ घोर सेवों क जो कि परिभा मप्रचार
 पत्रादि में मिलन है रपीन बाओं पर ।

कार काओं को (जिन में पुस्तकों का विवरण है) लखको के पत्रादि नम से
 रगना चाहिए घोर रपीन ताओं का रेगासिष्ठ परिभादि भाषा क प्रकाशित क्रम से ।
 इनमे नाम यह होया कि एक ही पत्रिका के पढ़ने योग्य सब सेव एक नाम या जाएँ ।
 उन्हें पर्याप्तम प्रकाश परानुक्रम मे समाकर गुलकासय में क्रम से पढ़ जानना चाहिए ।
 इनमें समय भी बरत हावो ।

पुस्तक सूची कार्ड की फाईल

कार्ड को क्रमवारि क्रम से एक file में तथा लेना चाहिए प्रति दिन । इस बात की परीक्षा नहीं करनी चाहिए कि पर्याप्त इकट्ठा हो लेने दो तब करेंगे । इसके लिए रिंग फाईल Ring File होना चाहिए । तामे से बची file में खोलकर फिर से बांधने की अनुविधा होती है ।

कार्ड को क्रमबद्ध रखना चाहिए । कार्ड से कुछ उसे कार्ड पर (जा ऊपर के दोनो कार्ड में भिन्न रंग के हो) क्रमवारि क्रम तथा Albedic क्रम में नमूने के अनुसार काट लेना चाहिए । पत्रिकादि के कार्ड के Index cards उन के नाम के अनुसार कटने पर सुविधाजनक होता है (देखिए नमूने) ।

नोट्स लेना

शोधकार्य के लिए नोट्स लेना एक महत्वपूर्ण अंग है । जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा सका है, शोध के विद्यार्थी का अपने विषय का आद्यापान्त अध्ययन करना होता है, उन विषय में पूर्ण सम्पूर्ण कार्य पढ लेना आवश्यक है किन्तु पढी हुई वस्तु भूल न जाए इस हेतु Notes लेना अनिवार्य हो जाता है । ये नोट्स ही नीचे के पत्थर हैं जिन पर शोधप्रबन्ध का महत्त्व खडा होना है । यतएव इस नीचे की सुदृढ़ बनाना शोधविद्यार्थी का परम कर्तव्य है ।

नोट्स किन पुस्तकों के बनाने हैं, किन लेखों के बनाने हैं—ये आप अपने पुस्तक सूची काइस् में पता लगाएंगे । पुस्तक सूची काइस् से बताई पुस्तक मिलने पर पुस्तक में 'क्या पढ़े', 'क्या छोड़े', को समझना आती है । यह एक विशिष्ट समस्या है । एक साधारण पाठक के पाम तो पर्याप्त समय हाता है और वह यदि जिज्ञासु है तो पूरी पुस्तक पढ डालेगा किन्तु शोध के विद्यार्थी का तो समय से लडना है, छोड़े से समय में सज पढ़ना है । ज्ञान का काप अनन्त है और विद्यार्थी सीमाबद्ध है अनेक बन्धनों से । फिर उसे पढना भी गहराई से है । यतएव पठन-अपठन का उसे निर्णय करना पडता है । इस का कोई सरल मार्ग नहीं है—नीरक्षीर विवेचन विषय में नदीपण विद्वान ही कर सकते हैं । फिर भी निर्णय में सुविधा इस पर निर्भर है कि आप के साधकार्य की रूपरेखा कितनी विस्तृत है, कितनी गहराई तक आप की पूर्ण योजना है । यदि आपने अपने शोध के प्रत्येक अंश को पूर्णभक्ति योजनाबद्ध कर लिया है (जो कि बडा कठिन है) तो आप को सरलता होगी । आप विषय सूची या पुस्तक के अध्यायो पर एक झलक मारते ही जान जायेंगे कि कौन अंश मेरे काम का है । यहाँ तक कि समय कम होने पर पुस्तक की अनुक्रमणिका से ही पठनाश का निर्णय कर सकते हैं ।

किन्तु पूर्ण योजना के पक्व होने के पूर्व प्रथम कुछ मास में निर्देशक से निर्दिष्ट कुछ आधार पुस्तकों का पूर्ण अध्ययन कर लेना चाहिए और उसके ऐसे नोट्स बनाने चाहिए जो मूल नोट्स बन जाए । अन्य पुस्तकों के, बाद में, पूरे पूरे नोट्स बनाना आवश्यक नहीं है । पुस्तक के इष्ट अध्याय को पहले पूरा-पूरा पढ डालिये अथवा सरसरी तौर

से लेख लीबिए । विह्वयम दृष्टि से प्रथम्य का डीषा पूरा पूरा घाषों के घाने घा घाएया । तब प्रमीष्ट घंषों के नोदस बना ङसिए ।

नोदस कई ङाँठि के हो सकेते हैं । प्रमुख ये हैं —

- (i) Paraphrase Type—विषय घपने सन्धों में । बीष बीष में मुससेखक के ङाक्य या ङाक्यघाष । में ।
- (ii) ससोप नोदस Summary Notes—विषय के सारांघ ससोप में ।
- (iii) उदररुप नोदस Quotation Notes—मुख लेखक के सन्धे उदररुप उदररुप ङही होता ङाँसिए, सधिका स्याने सधिका । पृष्ठ नं तीये प्रवरण ङसिए ।
- (iv) प्रेरक नोदस Suggestive Notes—मुख लेखक के विघारों से घाप की कुछ प्रेरका मिळी या मुख हुई । ये नोदस रंभीत ङाक्य पर तुरन्त सिख ङाँसिए । ये ङास्तविक घोष में ङहुव ङाम घाँटे हैं ।

नोदसु ङाँडसु

घोष के विघारों की नोदसु एक ङंधी ङापी में ङही बनाने ङाँसिए । पूरी पुस्तक के नोदसु एक ङापी में ङना सिए, हुसरी पुस्तकों के हुसरी ङापी में—इस प्रकार के नोदसु की एक एक विषय सिखने के लिए ङिर पूरा पूरा पढना होता । यह ङहुव समय ङा सेमा परिषय में पढेया घौर कोई उस्तख छट पी या ङकटा है । घतएव नोदसु खुसे 10000 Sheets में सेने ङाँसिए ।

ये Notes-Sheets या notes-cards कई ङाकार के हो सकेते हैं पर ङो ङाकार प्रमुख है—फूलस्रेप टाईपस्रीट घाकया ङापी Size । यदि नोदसु सधियत ङनाने हैं तो स्रोटे परिमांघ के ङामज ङटाइए पर पूर्नेनिर्नेयाङुघार सघ ङाक्य एक ही परिमांघ के होने ङाँसिए ।

नोट करते समय एक ङाक्य पर एक ही विघार की इकाई उठारनी ङाँसिए । विघार इकाई का परिमांघ घाप के ङांघ पर निर्भर है । यही तो पराकाष्ठाघो से ङनना है । यदि विघार इकाई ङहुव स्रोटी कर ङी तो नोदसु ङाँडों की संख्या घरसधिक हा ङाएनी तघा सघासने में ङठिनाई होती । यदि विघार इकाई विघास नी तो एक ही ङाक्य पर ऐंघे ङो या घनेक विघार घा ङाँएये ङो घाप ङार में पुनः सुख्म विमांघज में पुनः पुनः करना ङाँसिये । प्रथम्य मारने घाप की हुसरघिता पर निर्भर है । ही विघार इकाईघों की विघासता की घपेघा सपुता में घधिक सीकर्म है ।



नोट्स शीट के दाहिने ओर इतना स्थान छोड़ दीजिए। इस के समानान्तर बाईं ओर विषय का सकेत कीजिए। फिर नोट्स लीजिए। पृष्ठ के नीचे सक्षेप में स्रोत दीजिए। स्रोत का पूर्ण विवरण होना आवश्यक नहीं है—केवल सक्षेप में लेखक का परनाम पुस्तक नाम व पृष्ठ। साथ में Double checking के लिए Bibliography Card में कुछ ऐसा code डाल दीजिए वह भी नीचे यहाँ लिख दिया जाए। पर अकेला code (चिह्न) गलती करवा सकता है।

विषय		
सक्षेप में स्रोत		

नोट्स फाईल

मुक्त पन्ने वाली (loose leaf) प्रणाली का सबसे बड़ा दोष है कि अकेले अकेले कागज सरलता से खो सकते हैं, इधर उधर हों सकते हैं। अतएव नोट्स निबन्धन में आसावधानी नहीं करनी चाहिए। पहले तो जिन loose leaves पर काम करना है वे loose न हों तो अच्छा है। आप एक punched file (देखिए नमूना) में बंधे रख सकते हैं, नोट्स लेते गए और कापी की भाँति पलटते गए। या clipfile (देखिए नमूना) में रखकर लिखते गए और लिख लिख कर लिफाफे में डालते गए या क्लिप clip के नीचे लगाते गए। हाँ, रात्रि में दिन भर के बने नोट्स शीटों को अवश्य क्रमानुसार लगा लेना चाहिए और पक्की फाइल में यथास्थान पहुँचा देना चाहिए।

नोट्स शीट के लिए punched file cover (देखिए नमूना) ले लीजिए। कुछ रगीन मोटे कागज की क्रमसूचक कार्ड्स भी कटा कर रख लेनी चाहिए। इस indexing के लिए—क्रमानुसार लगाने के लिए—आप को एक पूर्व योजना बनानी पड़ेगी।

सर्वप्रथम आप अपने विषय को ६ या ६ से कम मोटे भागों में बाँट लें। (एक भाग सामान्य (general) के लिए रख छोड़ा है)। प्रत्येक भाग के १० उपभाग बना लीजिए। प्रत्येक उपभाग के १० प्रभाग बना सकते हैं। इस प्रकार पूरा विषय १००० सूक्ष्म खण्डों में

बिना ही माता है और कोई ही विषय ऐसा होगा कि उस में १ से अधिक सूक्ष्म खण्डों की आवश्यकता पड़े।

प्रत्येक नोट्स के पीठ में बाह्ये ऊपर रिक्त स्थान में भाग का नम्बर (१ २ ६) माना है जान लीजिए। बाह में रात्रि में यह नीट माटे विभाजन ६ में भेजा जाएगा। का में मोटा भाग है यदि प्रतीक मोटा ही भेजा है तो उपनाग बना लीजिए। नोट्स में विभिन्न ६ के भागों विभाजन के संकेतानुसार कोई भी भ्रम या सभ्यता है। माल लिए ६ धाराओं ६ के परबात ८ लिखने पर ६८ बना। फाइल में ६८ बासे भाग में यह काबज पहुँच जाएगा। धर्मसे मूलम विभाजन के बाह सभी संस्मृत नामक वही पहुँच जाएगा। एक एक सूक्ष्म खण्ड के समस्त पत्र पाठ नाम पहुँच जाएँगे जो कि Filing का ध्येय था।

यदि किए विभाजन में कीट का जाता है निरपित न हो सके तो—टाप लीजिए। कुछ दिना काय करने के परबात धन धाय धाय नम्बर जान लेंगे।

ही प्रत्येक विभाजन में का एक General या miscellaneous के लिए प्रत्येक रंग जिन में एव विषय का सके जो कई खण्डों में का मजठे हैं।

(Filing Indexes कथि समाए जाएँगे ये समूह में रखने से मानम होंगे)

विषयक्रमानुसार फाइल

विषय की file में प्रकाशित कम से index के साथ वर्तित foolscap पत्र होने चाहिए। किसी भी विषयों का उल्लेख होने से तुरन्त उस विषयों (topic) के नाम उल्लेख लिख लेना चाहिए। यह कार्य Bibliography card से प्रतिरिक्त होता है। इस का लाभ इस में है कि प्रत्येक सूक्ष्म खण्ड से उल्लेख विषयों हुई नामका का उल्लेख एक स्थान पर ही हो जाता है। उदाहरणार्थ का मध्यकासीन धर्म भाषा में क्या का है? इस विषय की Sheet पर मध्यकासीन धर्म भाषा पर पहुँचे समस्त समय समय पर पुस्तक नाम समय तथा Section तथा लिखते गए। पुस्तक का मिलने पर पड़ी जाएँगी और गनी Notes बनने। उसका Bibliography card एक ही बनेवा लिये इस सब के पूर्व उस का उल्लेख यदि पुस्तक पुस्तक हो चुका है तो पुस्तक पुस्तक विषय गच्छा पर हो जाएगा।

रेखांकन-चित्रण तथा रूपरेखा-विधान

इस विदग्ध गोष्ठी का महत्त्व

यह बड़ी प्रमन्नता की बात है कि हमने जिस सेमीनार की हिन्दी विद्यापीठ की ओर से आयोजना की है वह १८ तारीख से चलकर आज तक एक प्रकार से नियमित रूप से होती रही है, और उसमें हमने बहुत काफ़ी कार्य संपन्न कर लिया है। कितने ही लोगों की दृष्टि में यह सेमीनार काफ़ी सफल रही है ? इसकी वास्तविक सफलता तो आगे चलकर ही प्रतीत होगी जब कि इसका समस्त भाषण-संग्रह प्रकाशित होगा। इसमें आज तक जिन लोगों ने भाषण दिये हैं, उनके वे सब भाषण जब ग्रंथ के रूप में प्रकाशित होकर आर्येंगे तो मैं समझता हूँ, कि वे अनुसंधान की टेकनीक में शास्त्रीय दृष्टि प्रस्तुत करने की दृष्टि से हिन्दी के क्षेत्र में ही नहीं, वरन् मैं समझता हूँ, कि सभी भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में पहिले कदम के रूप में माने जायेंगे, और मील के पत्थर की तरह से यह संग्रह हिन्दी के क्षेत्र में काम करेगा। साथ ही हम लोग भी इस गोष्ठी में उपलब्ध स्तर से और भी आगे बढ़कर भविष्य की अपनी गोष्ठियों का स्तर बना सकेंगे।

आज सर्वत्र अलग-अलग स्वच्छन्द रूप से अपने-अपने मन के अनुकूल चाहे जिस प्रकार से अनुसंधान-कार्य करने की प्रणाली दिखलायी पड़ती है, इससे एक अव्याञ्छनीय अराजकता आ गयी है। हमारा यह उद्योग उसे कुछ अनुशासित कर सकेगा, ऐसी सभावना असमीचीन नहीं मानी जा सकती। हमारा यह प्रयोग सर्वथैव नवीन है, अभी तक इस प्रकार का प्रयोग कहीं भी किया ही नहीं गया था। केवल दिल्ली विश्वविद्यालय ने 'अनुसंधान का स्वरूप' नामक पुस्तक प्रकाशित करके अनुसंधानियों को कुछ सामान्य सहायता का मार्ग खोला था। फिर भी हम समझते हैं कि अभी तो हम लोगों का यह आरम्भिक आयोजन भी काफ़ी सीमा तक एक देन कहा जा सकेगा, और निश्चित रूप से इसके द्वारा कुछ-न-कुछ प्रगति अनुसंधान के स्थिरीकरण में होगी। हस्तलिखित ग्रंथों के पढ़ने में सहायता मिल सके, इसके लिए एक अक्षरावली भी इसमें देने की चेष्टा की जायगी। कुछ ऐसे ग्रंथ हैं जो ग्रंथों के समय के निर्धारण में हमको सहायता पहुँचाते हैं, उन ग्रंथों का भी

इसमें उल्लेख कर दिया जायगा और मोटे रूप से उन सिद्धान्तों का भी वर्णन कर दिया जायगा जिससे कि काल-निर्णय में हमको सुविधा हो सकती है। वस्तुतः यह एक बड़ी कठिन समस्या हुआ करती है। तो ऐसी धीर भी जो प्राक्त्वक सामग्रियाँ होंगी जिनको कि हम समझते हैं कि परिशिष्ट की भाँति देना चाहिए वे इसमें ही जायगी। घट में समझा है कि यह प्रश्न इस दृष्टि से काफी उपयुक्त हो जायगा। पर यह जो हमारे यहाँ रिचार्ज करनेवाले घनसंचायक हैं—भाषा तो हम यह कहते हैं कि जितने भी पुराने घनसंचायक हैं उनके घनसंचयन का विवरण हमें प्राप्त हो जायगा लेकिन ऐसा नहीं हो सका है। केवल तो घनसंचयनियों में ही घनसंचयन की प्रवृत्ति के विवरण मिले हैं। हम यह भी जानते चाहते हैं कि प्रवृत्ति के विवरण के साथ वे अपनी कठिनाइयों पर भी अपना विचार लिखकर भेजें जिससे यहाँ के विद्वानों से परामर्श करके वे कठिनाइयों दूर की जा सकें। अब तो निम्नी रूप से निवेदन की उन कठिनाइयों के सम्बन्ध में प्रकाश डाल सकते हैं। यों तो विद्युत्-विद्युत्ताय की दृष्टि से एक ऐसा व्यक्ति होगा ही चाहिए जो घनसंचयन का निवेदन करेगा उसे यह उसकी छोटी-मोटी बातों में सहायता देता रह सकता है, किन्तु हिन्दी इन्स्टीट्यूट में प्रवेश पानेवाला घनसंचयनियों यहाँ के समस्त विद्वान-वर्ग का या अध्यापक वर्ग का विज्ञानार्थी होता है। पर यहाँ विद्यापीठ में जो विद्वान हैं उन विद्वानों के पास जो कुछ भी उनका ध्येय ज्ञान है उसको प्राप्त करने का एक प्रकार से उसका अधिकार है। इस अधिकार का उपयोग किन विधि से हो ? हमारा विद्युत्-संचयन घनसंचायक के ध्येय के ध्येयों को देखें और वैज्ञानिक दृष्टि से धीरे धीरे सारस्वत (एकारमिक) दृष्टि से उसकी मात्तोजना करके बताएँ कि उस ध्येय-मध्य में क्या सार है और क्या प्रसार है। अब तक कि ठीक तरह से यह न बताया जायगा अब तक ध्येय में जो दोष रिलायी पड़ते हैं वे दूर नहीं हो सकते। ध्येय में सार और प्रसार को जानस और ज्ञानी को प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष करने का प्रयास अब तक सम्भव नहीं हो सकता अब तक कि इस प्रकार की विद्युत्-योधियों का आयोजन नहीं किया जायगा। अपने यहाँ अभी तक यह प्रयास नहीं है। किन्तु प्रथम यह सारस्वत परंपरा है। एक घटना भी मेरे सामने आई है। मैट्रिकल साइम में ऐसा ही के लिए जो रिचार्ज कार्य होता है उसमें घनसंचायक में यह प्रवेक्षित होता है कि हिन्दी एक प्राथमिक रिचार्ज प्रणाली में उसके एक-दो रिचार्ज वेगों या उनका ध्येय प्रबंध के पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। मेरे रिचार्ज वर्कसों में तत्कालीन विषय के निष्ठात विद्वानों का एक समूह होता है। जो रिचार्ज-वेपर (साध-निष्ठा) उन पत्र में प्रकाशित होने जाते हैं उन्हें विद्वानों या विद्वानों के पास तक पूरी तरह से प्रेषित करके छिद्र करत हैं। वे बना देने हैं कि हममें जित जित प्रसार को कभी वैज्ञानिकता की दृष्टि में है। यहाँ क्या जाटना और घटना चाहिए ? वे यह भी बता देते हैं कि उस निर्बंध में मान-वर्जन में क्या ध्येय मिल सकता है ? इन प्रकार यह विद्युत्-संचयन जग विद्युत् का उपयोग कर कि उन घनसंचायक के पास उमरी स्वीडि के लिए भेजा है। इनके लिए कोई ध्येय नहीं किया जाता। यह घनसंचायक उन संस्थाओं के अनुसार उसे छिद्र करके परिष्कृत पत्र देना है तो यह निर्बंध प्रेषित कर दिया जाता है। इन प्रथाओं

से कितना लाभ होता है। अनुसंधाता रिसर्च-पेपर को प्रस्तुत करने का ढंग इस प्रकार साक्षात् विधि से जान जाता है। यह सभवतः अमरीका की बात है। अमरीका घनाढ्य देश है। वहाँ पर ऐसे विद्वानों को ऐसे कार्य के लिए ही रखा जा सकता है। किन्तु भारतवर्ष में यह अभी सभव नहीं है। इसलिए ऐसी संस्थाओं के द्वारा जो विश्वविद्यालय की संस्थाएँ हैं, यह कार्य सम्पन्न कराया जा सकता है। तो तात्पर्य यह है कि इस प्रकार का भी कार्य हम करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि आज विधिवत् हम यह कार्य कर सकें। इसके लिए हम लोगों को समय और सुविधा भी हो और जो हमारे विद्वान हैं उनका यहाँ महत्व समझा जाय तो ऐसा कार्य सभव हो सकता है। सैमीनार में वह कार्य सामाधानिकाओं के द्वारा किया जा सकता है। अगली बार सैमीनार में हम समझते हैं कि इस पक्ष पर विशेष जोर दिया जायगा। अब विविध अनुसंधाताओं ने अपने अनुसंधान में जो प्रगति की है, यहाँ उसका संक्षेप में परिचय दिया जाता है।

शोध-विवरण

(एक) डिंगल का गद्य साहित्य—(दूसरा) रामानन्दी सम्प्रदाय। (तीसरा) नाम माला। (चौथा) ब्रज की संस्कृति और कृष्ण। (पाचवाँ) १५वीं से १७वीं शताब्दी के काव्य रूप। (छठवाँ) वुलदशहर का लोक-साहित्य—इन पर जो शोध कर रहे हैं उनके विवरण हमारे पास आए हैं। आरम्भ की दो रिपोर्टों से विदित होता है कि उन अनुसंधाताओं ने क्या-क्या कार्य किया है? यह बात अवश्य विदित होती है कि ये बहुत ईमानदारी से काम कर रहे हैं, ये अनेक स्थानों पर बाहर भी भ्रमणार्थ गये हैं। जहाँ-जहाँ भी इनको सामग्री प्राप्त हो सकती है वहाँ-वहाँ से इन्होंने वह सामग्री प्राप्त करने की पूरी-पूरी चेष्टा की है। जो कार्य यहीं विद्यापीठ में रहकर किये जा रहे हैं उन सभी में काफी प्रगति हुई प्रतीत होती है। जैसे 'नाम माला' पर जो काम हो रहा है उसमें कुछ ही महीनों में १७४०० शब्दों के कार्ड तथा २४०६६ शब्दों के कार्ड तैयार हुए और वह अकारादि क्रम से व्यवस्थित भी कर लिये गये हैं। और वह हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर किये गये हैं, जिन्हें पढ़ने में समय-समय पर इनको कठिनाई भी पड़ती रही है। इसी प्रकार से मीरा पर जो कार्य हो रहा है वह कार्य सामग्री-सकलन की स्थिति तक सब पूरा हो चुका है। इसमें से दो अवतरण यहाँ सुना देना चाहता हूँ। 'मीरा के समस्त पदों को केन्द्रीय भाव के अनुसार छांटकर निम्न वर्ग बनाये गये हैं। नाम, रूप, लीला, गुण, भक्ति, भजन, सत्संग, शरण, तीर्थ, वैराग्य, कथा-प्रसंग, सयोग, वियोग, प्रेम, पति, भोग, साधु-सत, गिरिधर नागर आदि। इस निबन्ध में इन वर्गों के स्रोतों की तलाश भी की गयी है, फिर अपने पद-संग्रह में उन्होंने ११ स्रोतों से जितने भी मीरा के नाम से प्रचलित पद मिलते हैं उन सब को सम्मिलित किया है। इस पद-संग्रह के अनुसार मीरा द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द के कार्ड बनाये हैं, जिनकी कुल-संख्या ५६, ४३५ है। यानी ५६, ४३५ शब्द मीरा के पदों में हैं, उन पदों में जो अब तक मीरा के नाम से मिलते हैं। ये कार्ड बन जाने के उपरान्त कुल शब्दों को कोश की भाँति अकारादि क्रम से छांटकर पृथक-पृथक कर लिया गया है। उसमें अपने संग्रह की पद-संख्या तथा अन्य संग्रहों की पृष्ठ-संख्या आदि का उल्लेख कर उनकी पृथक-पृथक कुल संख्या का भी निर्देश

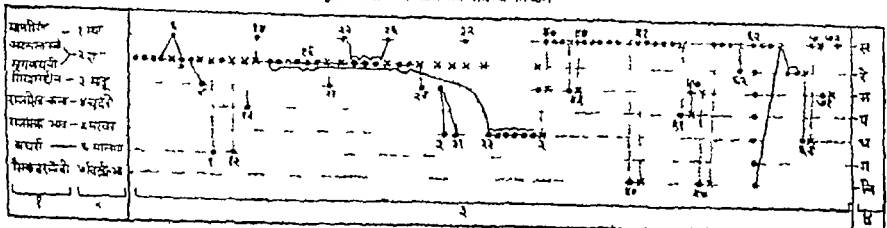
कर दिया गया है। इस प्रकार से इन कार्यों से घंटकर जो कुछ सम्बन्ध बना पर्वों में भीषण के द्वारा प्रयुक्त मिलती है वह है १४ ४२१ भीषण के काल १४ ४२३ खम्बों का प्रयोग किया है। इनका अध्ययन चल रहा है। तो यिने संक्षेप में भाषको यह भीषण देकर सूचना देने की चेष्टा की है कि जो धनु संधान का विवरण प्राप्त हुआ है उनसे यह विदित होता है कि कार्य काष्ठी महारई से भीषण पुरे परिश्रम से तथा वैज्ञानिक प्रयासी से किया जा रहा है। एक बीसिस धवन यहाँ से प्रेषित की जा चुकी है। वह तिम्मूस्तिस्स संबंधी थी कैलाशचन्द्र घाटिका थी की है और एक दूसरी करीब करीब तैयार है टाइप क सिए वे दी कपी है। यह भी तिम्मूस्तिस्स की है। एक है बनारसीदास जैन पर यह भी तैयार है। और जो तीन और भी करीब-करीब तैयारी पर जा गयी है। मे समझता हूँ कि ये सभी इस वर्ष में तैयार होकर जा पायेंगी। अब कुछ और बातें हैं जिनके सम्बन्ध में यहाँ बर्णन करना चाहता हूँ। एक तो यह है कि सहायक पुस्तकों की सूची में संभवतः कल जा हवें भी मे भी इसे बताया होया कि यहाँ पुस्तक-विषयक धन्य सूचनाएँ प्राप्त मिश्रें यहाँ यह भी उल्लेख करें कि वह पुस्तक धापको यहाँ से प्राप्त हुई? इस खोद का भी उल्लेख होना चाहिए। धपर वह धापने पुस्तकालय से लेकर पठी है तो पुस्तकालय के नाम का संकेत कर के उस पुस्तकालय की उस पुस्तक की संख्या भी धाप के पास रहनी चाहिए और उस सूची में उसका भी उल्लेख किया जाना चाहिए क्योंकि इससे कई लाभ हैं। एक उपयोग तो यह भी है कि जब धाप को स्वयं भी उस पुस्तक को देखने की पुनः आवश्यकता पड़ेगी तो धाप यहाँ से उसी पुस्तक को फिर बासाती से प्राप्त करके देख सकेंगे। धत यह मेरा एक विचार सुझाव है। मे समझता हूँ कि उपयोगिता की दृष्टि से यह सभी को उपयोगी सिद्ध होया कि उस पर पुस्तकालय की संख्या का भी निर्देश रहना चाहिए और जब धाप अपनी बीसिस प्रेषित करें तो उसके साथ य यहाँ पुस्तकों की सूची देते हैं उसमें भी पुस्तकालयों की संख्या का उल्लेख कर दें। इस प्रणाली से यह भी धायक प्रमाण मिल जायगा कि इस धनुर्महाता ने मजसूज इस पुस्तकालय से लेकर वह पुस्तक पठी होगी। लेकिन इससे भी अधिक उम्हका मुख्य इस बात में है कि धापकी बीसिस के पाठकों की भी परेषानी कम हो जायगी क्योंकि धनुर्महाता का वर्तमान यह भी है कि वह सबे पढ़नेवालों का मार्ग भी सुधम करना जसे। अभी तक जिस रूप में पुस्तक-सूची (Bibliography) की जाती है उससे पुस्तक तथा लेखक प्रकाशक के नाम संस्करण धारिक का पता तो पस जाता है पर बहुत सी पुस्तकें धलभ्य होती हैं। चाहे जित पुस्तकालय में वे प्राप्त नहीं हो पायीं। धत उस पुस्तक के उस संस्करण की खोज में बेधारा धनुर्महाता लाइब्ररियों को सिखाता है। दूसरा पत्राओं पुस्तकालयों में अटकता धिक्कता है फिर भी पुस्तक प्राप्त नहीं हो पाती। यदि धापन उसमें पुस्तकालय और उनकी पुस्तक-संख्या का उल्लेख कर दिया तो उनकी सहायता न धत न पढ़ बार में ही उनकी मार्गी समझा हम हो जायकी और समय तथा धन की बचत होगी। धनुर्महाता में इन बचत का बहुत मूल्य है। एक धनुर्महाता को धायक में जो समय तथा जमी का खोबने में दूसरे को भी उतना ही

समय लगे तो अनुसंधान का धर्म भ्रष्ट हो जाता है। पूर्ववर्ती अनुसंधाता को आगामी अनुसंधाताओं के ऐसे व्यर्थ श्रम को बचाने की दृष्टि रखनी चाहिये। तो यह विधि बहुत उपयोगी होगी। मैं चाहता हूँ कि हमारी इस्टीमेट से रिसर्च करनेवाले इतना परिश्रम अवश्य करें कि वे पुस्तकालय की पुस्तक सध्या भी दें, और उस स्रोत का भी उल्लेख कर दें कि वह पुस्तक उन्हें कहाँ से प्राप्त हुई।

रेखाकन-गणितन-चित्रण

दूसरी बात जिस पर मैं बल देना चाहता हूँ वह यह है कि यीसिस को प्रस्तुत करने में हम किसी बात को समझाने के लिए जितना भी अधिक ग्राफ (रेखाकन) ग्री (तालिका) चार्ट का उपयोग कर सकें उतना ही अच्छा है। ग्राफ एव चार्टों का ही नहीं गणितीय दृष्टि का भी हमें अपने अनुसंधानों में ध्यान रखना चाहिए। साहित्य के अन्दर उसकी आवश्यकता है। और मैं क्षमा चाहता हूँ कि मुझे अपनी सुविधा के लिए एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात प्रस्तुत करने के लिए उदाहरणार्थ अपनी ही एक पुस्तक का उल्लेख करना पड़ रहा है। "मृगनयनी मे कला और कृतित्व" शीर्षक पुस्तक में केवल उसके प्रबन्ध-विधान को समझाने के लिए एक रेखन (ग्राफ) दिया गया है। किस अध्याय में क्या है? कौन है? इसी को एक ग्राफ के रूप में प्रस्तुत करके कितने ही उपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। कौन सा पात्र किस अध्याय में आता है फिर उसके बाद किस अध्याय में आता है? उसके बाद किस अध्याय में आता है? उसमें जो इतना व्यवधान होता है, उसके पीछे कोई मानसिकता अवश्य होनी चाहिए। उनके बीच में जो पात्र आते हैं, उनमें वे क्यो और किस रूप में आते हैं? ये सब बातें जब तक कि ग्राफ एक अध्याय-क्रम से चार्ट या ग्राफ बनाकर प्रस्तुत न करेंगे तब तक स्पष्ट नहीं हो सकेंगी। फिर उसके आधार पर उनका रेखन (ग्राफ) भी बना सकते हैं। एक उपन्यास के सम्बन्ध में भी इस प्रकार की टेक्नीक का उपयोग किया जा सकता है, यह ग्राफिग और चार्टिंग बहुत उपयोगी और बहुत लाभदायक होती है। क्यो कि उसके बहुत से तथ्य उसके द्वारा सफलता पूर्वक हमारे सामने निकल आते हैं। मृगनयनी उपन्यास के लिए यह रेखन (ग्राफ) दिया जा सकता है।

मृगनयनी उपन्यास का प्रबन्ध-रेखन



इस रेखन को प्रस्तुत करने के लिए पहल वी मह छोट लिया गया कि समस्त कथानक किन किन स्थानों से संबन्धित है। ऐसे ७ स्थान छुट्टे गये हैं। उन स्थानों में कथा प्रसंग के प्रमुख पात्रों को भी छुट्टे लिया गया है। सात स्थानों से संबन्धित कथा-प्रसंगों के पात्रों को पहले फिर स्थानों को क्रमात् मिलकर प्रत्येक के सामने एक रेखा खींच दी गयी है। इन रेखाओं पर बिन्दु जड़े गए हैं। ये बिन्दु ७१ हैं ये उपन्यासों के अध्यायों का निर्देश करते हैं। बिद्युत् स्थान की रेखा पर बिन्दु है उस बिन्दु का सम्बन्धने अध्याय में उसी स्थान का कथा प्रसंग उन पात्रों की प्रमुखता के साथ प्राया है। इस रेखन से उपन्यास का समस्त विधान स्पष्ट हो जाता है। श्रीर ध्यानपूर्वक देखने से धर्म धर्मेक निष्कर्ष भी स्वयंमेव इस रेखन से प्राप्नुमूर्त हो जाते हैं। यदि यह रेखन दिया तो यह भी प्रमाणित हो उठेगा कि अनुसंधाता ने उपन्यास को वैज्ञानिक विधि से रखा है। इससे प्रबंध का मीरब भी धीर सोमा भी बड़ेभी। इसी प्रकार कवि के समस्त कृतित्व का भी अध्ययन के लिए रेखन का उपयोग किय जा सकता है।

ऐसे शाक या रंजन का रेखाकर सहज मात्र से कितनी बहुत सी गभीर बातें प्रस्फुटित हो उठती हैं या सामान्यता याही नहीं सुनवी। इनसे धनकों भाव्य धारणाएँ धूर भी हो जाती हैं क्योंकि यह तो वैज्ञानिक क्रम से तथ्य का प्रस्तुत करती है। इससे उद्भूत निष्कर्ष अप्रामाणिक नहीं हो सके।

यह तो एक प्रकार से मापितोय रेखन हुआ। किन्तु सामान्य रेखा-चित्रण भी उपयोगी होता है। इसका प्रधान उपयोग तो किसी सूक्ष्म कथन या तत्व की मूल कल्पना का बिन्दु प्रस्तुत करके समझाने के लिए होता है। फिर भी वहाँ इससे बहुत सी न समझ में आनेवासी सूक्ष्म बातें धरमता से हृदयचम हो जाती हैं, वहाँ बहुत सी धन्य बातें भी स्पष्ट हो जाती हैं तथा वो चीजों के तुलना-पूर्वक अध्ययन का तो यह धनुषम मार्ग है।

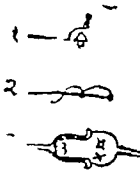
उदाहरण के लिए प्रेमधर्म की कहानियाँ में डरों का भेद समझाने के लिए कुछ कहानियों के डरों का यो विवरण दिया जाव कि—

एक डरों—स्वफित को एक रात में घास्था है वह उसे धनमाने जला पा रहा है। एक घाघाव से उसका भ्रम धजन हो जाता है वह उस त्याग देता है। परिणाम-स्वरूप उसे कहीं धर्म्य से उसका पुरस्कार मिलता है। उदाहरण-पुरस्कार, मात भन्नी धीर वैक का विधासा।

दूसरा डरों—स्वफित सीधे-सधके मार्ग पर है, परिस्थितियों का पूरा धराध पड़ता है वह धटन रहता है, धण्ट मे परिस्थितियों का मूल धूनधार उसकी धीर धुकर उसकी पुरस्कार करता है, उदाहरण नमक का धारोगा।

तीसरा ढर्रा—कथा-सूत्र सीधे सच्चे मार्ग पर चल रहा है। एक घटना से सघर्ष उत्पन्न हो जाता है। सूत्र विभाजित होकर एक दूसरे से भिन्न दिशाओं में प्रभावित होता है। विरोध बहुत बढ़ा कि फिर एक घटना और फिर दोनों पूर्व स्थिति को प्राप्त हो गये।

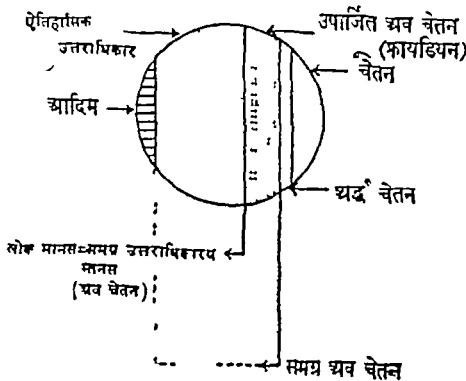
यदि इन्हें निम्नस्थ तीन रेखा-चित्रों से भी सज्जित कर दिया जाय तो तुलना का मर्म कितनी सहज प्रणाली से हृदयगम हो सकता है —



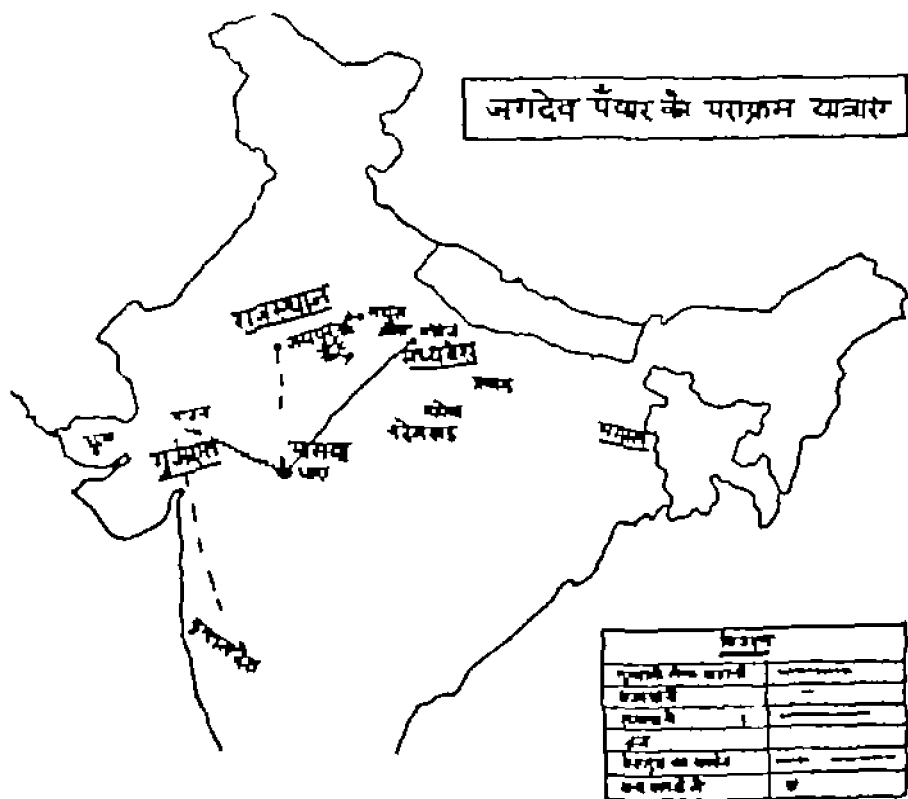
संकेत-	—	कथा सूत्र मरल	
	○	आघात	□ भिन्नता
	○	परिनिर्धालि या अन्यसूत्रता भर्षक	
	□	घटना	
	✕	प्रभावन की दिशा का दर्शक	

ये रेखा-चित्रण कहानियों की टेकनीक की भिन्नता को असदिग्ध रूप से स्पष्ट कर देते हैं।

ऐसे ही लोक-मानस की मस्तिष्कीय स्थिति को स्पष्ट करने के लिए यह चित्र एक प्रवध में दिया गया है।



भौतिक भावों का स्पष्टीकरण वा बहुत ही प्रासानी से बिना रेखांकन से होता है। जगदेव नामक एक लोक-नायक की कथाओं के आधार पर उसकी विभिन्न यात्राओं का भौतिक चित्र दे दिया जाय तो बहुत उपायेय रहता है।



तासिका सघटन

तासिकाओं को सभ्यता का भी ऐसा ही समतुल्य उपयोग किया जा सकता है। मान लीजिये भारत प्राचिन साहित्य विषयक अनुसंधान का विवरण दे रहे हैं तो उसकी तासिका बनाकर वर्ष विषय भर सकते हैं। उद्ये —

प्राचिन साहित्य पर प्राप्त उपाधियों का विषय-विभाजन।

सं ११ से

साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य	साहित्य
१०	०	२२	१	२	६	२	१	१	२	२	१	१	१	११

वश वृक्षण—‘वश-वृक्षण’ प्रणाली भी बहुत उपयोगी है। इसका तो सामान्यतः उपयोग भी बहुत होता रहा है।

इस प्रकार कितनी ही विधियों से गणित, रेखा, रेखा-चित्रण, तालिका वश-वृक्षण आदि द्वारा विषय को प्रेपणीय, मक्षिप्त, प्रभावोत्पादक, प्रेरणीय, तथा सज्जा-सौभाग्य मय बना सकते हैं। इनसे प्रवचन में प्रागणिकता भी आती है, और वह आकर्षक भी बनता है। इन विधियों का हमें अपने प्रवचन में अधिकाधिक उपयोग करना चाहिये।

आप लोग इस बात की चेष्टा करें कि जहाँ आप अपने अध्ययन में प्रवृत्त हो और पीसिस लिखने की चेष्टा करें, वहाँ यह देखें कि जिस भाव को भी आप चार्ट के द्वारा हृदयगम कर सकते हैं, जिसको आप रेखा-चित्रों के द्वारा हृदयगम कर सकते हैं, ग्राफ के द्वारा हृदयगम कर सकते हैं, उसके लिए इनका उपयोग करें और स्वयं अपने अध्ययन की सुविधा के लिए भी ग्राफ आदि का उपयोग करें तथा प्रागणिक बनायें। कोई भी सचाई केवल अनुमान से नहीं कही जानी चाहिए, उसको ठीक-ठीक तरह से विश्लेषण पूर्वक जानना चाहिए। मेरा यह इस सम्बन्ध में एक निवेदन है। अब एक विषय रह गया था।

विषय निर्वाचन और रूपरेखाएँ

सौभाग्य से या दुर्भाग्य से द्विवेदी जी को (द्विवेदी जी सौभाग्य समझ सकते हैं अपनी दृष्टि से, उनको यहाँ से छोड़कर ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस में चले जाना पड़ा, और हम लोग अपने लिए दुर्भाग्य समझते हैं कि इतने अनुभवी हमारे साथी और विद्वान्, जो हम लोगों के साथ काम कर रहे थे उनको) हमें छोड़ कर जाना पड़ा। उनका ही यह विषय था। “विषय-निर्वाचन और सिनोपसिस तैयार करना”, रूप-रेखा तैयार करना। यह विषय उनकी अनुपस्थिति के कारण छुआ नहीं जा सका। यह विषय यथार्थतः तो द्विवेदी जी के द्वारा ही प्रतिपादित होना चाहिये था। किंतु परिस्थिति वश ऐसा न हो सकने पर अब मैं उस विषय का प्रतिपादन नहीं, उस विषय पर जो मेरा अभिमत है केवल उसी को आपके सामने रख रहा हूँ। और वह यह है कि विषय का निर्वाचन वास्तव में एक कठिन समस्या है। फिर भी विषय-निर्वाचन करना ही होता है। अतः इसमें पहले तो अनुसंधाता को यह प्रयत्न करना चाहिये कि वह अपनी रुचि की तलाश करें। हमारी रुचि किधर है? लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई रुचि को पहिचानने में ही तो होती है। क्योंकि जो एम० ए० करके विद्यार्थी आते हैं, वे अपनी कोई रुचि नहीं बना पाते। कुछ तो अवश्य ऐसे होते हैं जिनको लेखन का या किसी विशेष प्रकार का चाव हो जाता है। उस लेखन या व्यसन की दृष्टि से उन्हें कुछ विशेष पढना पड़ जाता है। लेकिन जो केवल परीक्षा की दृष्टि से पढते हैं और केवल परीक्षामात्र का ही जो पाठ्यक्रम है उसी पर निर्भर करते हैं, वे प्रायः अपनी रुचि की तलाश नहीं कर पाते। तो सबसे पहिली बात तो यही है कि हम अपनी रुचि को जानें। तब अपनी रुचि को जानकर तद्विषयक बड़े से बड़े क्षेत्र से विषय की कल्पना शुरू करके बड़े से बड़ा विषय चुन लें। फिर उस पर विचार-विमर्श करते-करते उसे छोटे से छोटा करें। हम उसे जितना छोटे से छोटा कर सकें

उठना छोटे से छोटा उसे बनायें। पर यह बात हमें ध्यान में रखनी चाहिए कि यह उठना छोटा भी न हो जाय कि उस विषय पर हमें समुचित सामग्री ही न मिल सके। ता पहिले सचि फिर उसको छोटा करके छोटे से छोटे विषय पर जिस रूप में भी अधिक से अधिक सामग्री मिल सकनी है, उसको सामने रख कर तब हम अपना विषय निर्बाधित करें। विषय-निर्बाधन में निश्चित रूप से निर्दोषक की सलाह तथा परामर्श आवश्यक है। क्या कि बसे ता विषय अनुसंधान की दृष्टि से ही उसकी सचि मायता और धमता को ध्यान में रख कर प्रबानतया पुना जाना चाहिए फिर भी अनुसंधान विरुद्ध एक प्रकार से मौखिकता ही होता है उसका घाने की कठिनाइयों का और घाने के मार्ग का कुछ ज्ञान नहीं होता इसलिये यह आवश्यक है कि जो निर्दोषक है उसका भी परामर्श उसको मिले। विषय का प्रारंभिक मुताब प्रस्तुत हो जाने पर, यह परामर्श आवश्यक है कि उसे प्रथम निर्भय की काटि में माने से पूर्व दो काम और किये जायें। एक तो उस विषय के घन तर्क के सम्बन्धन का इतिहास प्रस्तुत किया जाय। घन तर्क उस विषय पर किसना और क्या सम्बन्धन हो चुका है यह इतिहास क्रम से प्रस्तुत किया जाय। उस पर जो ग्रंथ और निर्बंध या सचि मिले यसे ही उन सबकी तालिका और सार प्रस्तुत करके यह देखा जाय कि जो विषय दिया जा रहा है, उससे पूर्व के कृतियों की क्या देन रही है और यह क्या विषय अपने अनुसंधान में किस देन की समाधान रखता है। दूसरे यह देखा जाय कि विश्वविद्यालयों में उस विषय पर कार्य तो नहीं हो चुका है। हम सोच विश्वविद्यालयों के लिए रिस्र्च करत हैं और विश्वविद्यालयों में विषय निर्धारित हो जात है और घनका विषयों पर घन तर्क प्रथमयात हो चुका है। घनक पर हो रहा है। विश्वविद्यालयों के सम्बन्धन मान ता यह कह सकते हैं कि घन विषय रह ही नहीं गया है बल्कि सभी विषय समाप्त हो गये हैं। मकिन में इन दृष्टि से सहमत नहीं हैं। विषय हमारी बाढ जाह रहे हैं। कजर आवश्यकता इन बात की है कि हम उस पेशी दृष्टि से उन क्षेत्र को देख सकें और यह समझ सकें कि कौन सी बात है जो सभी नहीं की जा चुकी है। ता हम विषय चुनने के समय जहाँ धन को देखें यहाँ यह भी रखें कि जिस रूप का सम्बन्धन अनुसंधान करें। रूप के सम्बन्धन में भी सम्बन्धन हो सकता है। और रूप के साथ उनके किना घन विषय ना भी हो सकता है साहित्य-शास्त्र की दृष्टि में भी हो सकता है। साहित्य शास्त्र में जो भाषा है उसकी दृष्टि में हो सकता है। भाषा में जो कला है उसकी दृष्टि से उनका सम्बन्धन हो सकता है। प्रायक सम्बन्धन विषय के भी घन होत है उन घन पर भी काम हो सकता है और उनका एक ऐतिहासिक सम्बन्धन तथा उनका विश्वसांस्कृतिक और प्रगति-जन सम्बन्धन भी हो सकता है। इन प्रकार से इन विषयों के चुनने में हम घनकी दृष्टि और सचि का उपनाम कर सकत हैं। एक विषय पर एक दृष्टि से काम हुआ हो ना हो सकता है दूसरी दृष्टि से न हुआ हो। मान लीजिए कि मुत्तमीशान के घन-कार्य पर ता काम हो चुका है पर मुत्तमीशान की घन-वाचना पर तो विचार नहीं हुआ है। किन घन का मुत्तमीशान ने कही-कही विंग दृष्टि से उपनाम किया है यह अनुसंधान के लिए एक प्रयुक्त विषय हो सकता है। फिर मुत्तमीशान पर न घन की दृष्टि से न घन वाचना या रण-वाचना की दृष्टि से सम्बन्धन हुआ है। ऐसे सम्बन्धन होने चाहिए। एव

अनेको क्षेत्र है जिन पर कि गौर किया जाय तो अनेको विषय मिल सकते हैं। तो विषय-निर्वाचन में हताश होने की बात नहीं है। इन सबके होते हुए यह भी जरूरी है कि प्रत्येक अनुसंधान के लिए जो कुछ फील्ड-वर्क अपेक्षित होता है, उस की भी पहिले से ही कल्पना कर ली जाय। फील्ड-वर्क के बहुत से कार्य हमारे सामने पडे हुए हैं लेकिन यहाँ पर जो विद्यार्थी आता रहा है वह कहता रहा है कि हमें ऐसा विषय दीजिये जिसमें फील्ड-वर्क न करना पडे। यह तो मैंने पहिले भी बतलाया था, यहाँ भी बतलाता हूँ कि कोई भी विषय हो उसमें फील्ड-वर्क कुछ न कुछ करना ही पड जाता है। ऐसा विषय नहीं मिलेगा, जिसमे किसी न किसी प्रकार का फील्ड-वर्क न करना पडे। लेकिन फील्ड-वर्क के भी इस प्रकार से प्रकार हो जाते हैं। एक तो ऐसा फील्ड-वर्क होता है कि किसी पुस्तक को देखने के लिए बाहर कही किसी पुस्तकालय में जाना पडता है। किसी विद्वान से इस सम्बन्ध में मिलना पड रहा है। लेकिन जिसे ययार्थ फील्ड-वर्क कहते हैं वह यह है कि फील्ड में जो विखरा हुआ दाना पडा हुआ है उसको एक एक करके चुना जाय जैसे कि लोक-साहित्य-सम्बन्धी, और भाषा-सम्बन्धी है, वोलियो सम्बन्धी है। इस प्रकार के फील्ड-वर्क के काम के विषय के क्षेत्र भी बहुत खाली पडे हुए हैं और उन पर अभी बहुत कम काम हुआ है। अब लोग इस क्षेत्र की ओर भुके हैं। यह तो हुई विषय के निर्वाचन की बात। इस के साथ रूप-रेखा बनाने का प्रश्न हमारे सामने आता है। रूप-रेखा-निर्माण करना बहुत ही महत्वपूर्ण चीज है। और इसमें यह ध्यान रखना चाहिए कि रूप-रेखा ठीक बने। क्यों कि यदि रूप-रेखा गलत बन जाती है तो आगे चलकर बहुत परेशानी हो जाती है। एक अनुसंधित्सु को केवल एक शब्द के ही कारण परेशानी हो रही है। एक शब्द या 'कृष्ण लोर'। इसका अनुवाद एक ने किया—'वार्ता' और एक ने 'आख्यान' सुझाया। एक ने कुछ और सुझाव दिया। अब वह इसी में परेशान है कि वार्ता या आख्यान या क्या ? और बहुत आगे चलकर जब बहुत काम हो चुका तब यह समस्या उनके सामने आयी कि आख्यान की बात रखें कि वार्ता की बात रखें ? उन्हें काफी उलझन हुई। इस उलझन में उनका काफी समय बीता। इससे स्पष्ट हुआ कि कठिनाई एक शब्द के कारण भी आगे चल कर उठ खडी होती है। कभी ऐसा होता है कि विषय की रूपरेखा बना ली गयी, वह रूप-रेखा स्वय अच्छी तरह से समझी नहीं, दूसरे किसी व्यक्ति से बनवायी। फलत अब यह परेशानी हुई कि उक्त रूप-रेखा में अमुक बात का क्या मतलब है। कठिनाई यही हो जाती है। यह तो अनुसंधाता के अपने प्रमाद से कठिनाइयाँ हुई। पर और भी कठिनाइयाँ होती हैं। कुछ कठिनाइयाँ तो इसलिए होती हैं कि रूप-रेखा में चाहिए कुछ और दिया जा रहा है कुछ। इस प्रकार की रूपरेखाएँ बहुत बनती हैं। मान लीजिए 'भक्ति' सबधी कोई विषय लिया। अब हम लोगो के यहाँ एक प्रकार का चलन हो गया है कि प्रत्येक का अध्ययन वेदो से शुरू होना चाहिए। अब वेद भी नहीं, उससे आगे जाने की होड में हडप्पा-मोहनजोदडो की बात होने लगी है, निश्चय ही अपने विषय को इतनी दूर से आरम्भ करना समीचीन नहीं। इससे आप मुख्य अनुसंधान से हटकर अप्रासंगिक चर्चा और अनावश्यक अध्ययन में प्रवृत्त हो जायेंगे। तो सिनोपसिस के ठीक न बनने के कारण उसे इतना समय उस चीज में लगाना पडा

जो कि उसके कुछ मतमन की नहीं है, और वह उस पर कुछ कर भी नहीं सकता। क्योंकि वह हिन्दी का विषय भिये हुए है। वह न तो संस्कृत के पंडित है न बेब भाषा के पंडित है न छायाय पाणिनी को उन्होंने समझा होगा। न महाभारत को कभी देखा होगा। इन सबके लिए वे उधार लिए हुए विचार रखेंगे। जिनमें उनका कुछ भी यौरन नहीं हो सकता। उनसे उनके लिए बचप ही पेशा हो सकता है। वे प्रामाणिक बातें कह सकते हैं। भ्रम को फेंक सकते हैं। जब हम ऐसी बीसियों को देखते हैं तो उनमें ऐसी सत्तरसाक बातें मिल ही जाती हैं क्योंकि भाष स्वयं तो उस विषय के अधिकारी नहीं थापको दूसरों के मतों पर निर्भर करना पड़ेगा। उन मतों की प्रामाणिकता की परीक्षा भी भाष नहीं कर सकते। मान भीजिए भाष किसी पहाड़ी प्रदेश के लोक-साहित्य पर लिख रहे हैं और उसमें भाष ऐम्पूजीसोबी की बात उठाते हैं। भाष ऐम्पूजीसोबी के विद्यार्थी नहीं हिन्दी के विद्यार्थी रहे हैं। ऐम्पूजीसोबी पर भाषका क्या अधिकार हो सकता है। जो पुस्तकें बोड़ी बहुत धापने पड़ी होंगी उनके आचार पर भाष यह कहें कि यह जाति इस प्रकार से धाई की दूसरी इस प्रकार से धाई और उसी पर भाष अपना बहुत सा नाम समाप्त कर दें तो यह किठनी मारी मूठ होगी। भाष ऐम्पूजीसोबी क्या होती है इसको ठीक ठीक जानते भी नहीं हैं जातियों का निधान किस प्रकार किया जाता है इसको भी नहीं जानते ये जातियाँ कहाँ से किस प्रकार आयीं उनका भी प्रसनी पता नहीं है तो ऐसे विषय का धपने प्रबंध में भाष किस साहस से सम्मिश्रित करना चाहते हैं? ऐसी मूर्खें इसलिए हो जाती हैं कि जब रूप-रेखा बनानी गयी उस समय तो यह उत्साह था कि वह इतनी मारी भरकम बनानी चाहिए कि मासूम पड़ें कि बड़ी विद्वत्पुर्ण है। अतः यदि कोई व्यक्ति ऐसे स्वर्णों की आलोचना करते हुए यह लिखे कि—

“When we approach the subject we find that the candidate has discussed racial contents of the population at length, there by involving himself in disputable problems unnecessarily. He should have been only descriptive without going to find out origins of the race-contents. He is not an Anthropologist nor an Ethnologist. The list of the books shows that he has not consulted authorities on Ethnology. In themes of this kind the references to unacademic and popular treatises should be avoided.”

The writer has gone with this theme discussing origins into language also. He has tried to show various influences contradicting its origin from Shaivism Apabhramsha. And in doing so he has made a mess of the whole affair. It appears that he has no intimate knowledge of the Science and History of Language. His statements such as follows, are unscientific.

‘इस प्रकार आदिमान से सस्ट-भाषा की भारतीय-संस्कृति का माध्यम बनकर बनी धायी की विवर्त प्राचीन होने के कारण यह संस्कृत जन साधारण के

समझने के लिये इतनी सहज नहीं रही। फिर शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्द्धमागधी आदि प्राकृतों का युग भी बीत गया। जनता के लिए ये प्राकृत अर्थात् पुरानी भाषाएँ अपनी साहित्यिकता के कारण कुछ कठिन भी हो गयीं।”

‘क्योंकि प्रत्येक साहित्यिक भाषा, लोक-भाषाओं के सम्मिश्रण से बनी हुई होती है जिसके कारण विभिन्न बोलियों की विभिन्न प्रमुख-प्रवृत्तियाँ विभिन्न होने पर भी मूल में एक ही रहती है।

ऋग्वेद की भाषा साहित्यिक है जिसे आर्यों ने साहित्य-प्रयोग के लिये प्रयुक्त किया और इसी को संस्कृत की सजा भी दी गयी।

हाँ, यहाँ वैसे आर्यों की भाषा में तब तक परिवर्तन अवश्य हो गया होगा। अतः नवागत आर्यों की बोली एवं पूर्वागत-आर्यों की बोली तथा यहाँ के मूल अधिवासियों की बोली अवश्य ही एक दूसरे से प्रभावित हुई होंगी और इन सब के सम्मिश्रण से एक विस्तृत-भूभाग के जन-साधारण की बोली का जन्म हुआ होगा, उसी को भाषा-वेत्ताओं ने शौरसेनी-अपभ्रंश की सजा दी।

As if the process of amalgamation of two groups of Aryan incomers, and aborigines of India happened so late as Apabhramsha age which according to him is between 8th-9th century and thirteenth-fourteenth century A D

“इससे यह भी संभव है कि भारत में आने वाली प्रथम खस जाति समूह आर्य (वैदिक) भाषा का प्रयोग करते थे। हो सकता है कि वे (वैदिक) आर्य-भाषा के साथ-साथ यहाँ के अधिवासियों की भाषा से मिली-जुली भारतीय-असंस्कृत-आर्य-भाषा का प्रयोग भी करते रहे हों। परन्तु यह आवश्यक भी नहीं है। लेकिन इतना तो स्पष्ट ही है कि इन लोगों की भाषा पर संस्कृत का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। क्योंकि ‘संस्कृत’ का विशेष रूप भारत में काफी बाद में निर्मित हुआ।”

So many things, have been said here rather axiomatically, without giving Pramana or proof and evident contradiction here in contained is quite overlooked,

इसके साथ ही गढ़वाली भाषा के आर्य-भाषा से निकट संबंध के विषय में यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि प्रागैतिहासिक काल में कुछ आर्य राजपूताना से, (मैदानी-भाग से) माध्यमिक-पहाड़ी क्षेत्रों में आकर बसे। ये भोटियों (भोट उत्तरी हिमालय) लोगों के अधिवास से निचली घाटी में बसे। जिन्हें कि भोटिया लोगो ने ‘खसिया’ कहकर सूचित किया।

Telling us about Pre-historic age, we do not know on what authorities and on what premises

The portion of historical philological discussion is full of such unwarranted statements

To my mind the writer ought to have confined himself to the descriptive linguistics of his field only and given us partly the description of language or languages of the area as they are found today. Hence the portion of historical discussion could be expunged and if however it is included, it should thoroughly be examined by some eminent philologist.

तो इस संकेत से यह प्रकट हुआ कि यदि रूप-रेखा में प्रभावशक्ति भातों का प्रहल ही विकास दिया गया होता तो एक सहाय तत्त्व समाविष्ट न हो पाते ।

प्रथम रूप रेखा के निर्माण में यह धारणा प्रावश्यक है कि यथा-संभव प्रभावशक्ति भातों का समावेश न हो पावे ।

दूसरी बात यह है कि रूप रेखा में प्रबंध के तीन भागों का यथाचित ध्यान रखना ही प्रावश्यकता है । वे तीन भाग ये होते हैं—

- १ भूमिका
- २ मुख्य विषय
- ३ परिशिष्ट

इस बात की सावधानी रखने की प्रावश्यकता है कि 'भूमिका' भाग इतना लंबी न हो जाय कि मुख्य विषय को बौना कर दे । कहीं से विषय को 'परिशिष्ट' में अधिक ठीक रह सकते हैं, उनका समावेश भूमिका या मुख्य विषयवाले संघ में न रख दिया जाय ।

भाग तीसरे प्राप्त विषय बना—

पश्चात्त का शास्त्रीय न साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन'

यद्यपि इस पर मैं इसके समर्थ तीन रूप-रेखाएँ रखता हूँ जिससे ध्यान तुलना-पूर्वक यह एक एक कि किस में क्या दोष है रूप रेखा न १ स्वतंत्र रूप-रेखा है । रूप रेखा न २ में ही तीसरी रूप-रेखा संशोधन के रूप में प्रस्तुत कर दी गयी है । यह तीसरी रूप रेखा पुष्पांकित (*) परा में दी गयी है, प्रथम भासनी से सम्बन्धी या एकत्री है । दूसरी रूप रेखा में किसे बड़े संशोधनों से ध्यान यह भी सम्भव सकते हैं कि पहली रूप-रेखा का पूर्वतः परिवर्तन कर दिया गया है । क्योंकि प्रथम प्रश्नाय प्रश्नाय पूर्व पीठिका प्रभावशक्ति है । दूसरे प्रश्नाय में पुराकासीन प्रवृत्तियों को प्रभावशक्ति रूप से सम्मिलित किया गया है जिससे मूल विषय बौना हो ही जायगा तीसरे प्रश्नाय में पुनः प्रभावशक्ति तत्त्वों को प्रभावशक्ति दी गयी है । इस प्रकार ६ प्रश्नायों में से तीक में प्रभावशक्ति विषयों को गौरव दिया है । बाकी में भी विषय के प्रमुख शास्त्रीयता पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया । उसे बहुत सामान्य रूप में प्रस्तुत किया गया है ।—इस दृष्टि से प्रथम इन रूप-रेखाओं को देखें—

रूप रेखा न० १

पद्मावत का शास्त्रीय व साहित्यिक दृष्टि से मूल्याकन

I पूर्वं पीठिका—

- (a) सूफी मत का आदि स्रोत ।
- (b) भारत में सूफी धारा का प्रवाह ।
- (c) आदि काल से जायसी के समय तक सूफी मत का विकास व विकृति ।
- (d) उक्त पृष्ठभूमि में जायसी का उदय ।
- (e) जायसी का युग ।

II जायसी को प्राप्त पुराकालीन प्रवृत्तियाँ तथा पद्मावत में उनका उपयोग—

- (a) वैचारिक धरोहर—(1) सूफी विचारधारा (11) हठयोग सम्बन्धी विचारधारा
 - (b) इस्लामी विचारधारा ।
 - (c) काव्य सम्बन्धी प्राप्त धरोहर ।
 - (1) प्रबन्ध प्रवाह—संस्कृत प्रबन्ध, प्राकृत प्रबन्ध, अपभ्रंश प्रबन्ध, हिन्दी प्रबन्ध, सूफी कवियों की पद्धति फारसी मसनवी शैली
 - (11) कविता के अंग—जायसी के समय तक प्रचलित मान्यताएँ—शब्दार्थ, अलंकार, रीतिशैली, गुण, ध्वनि ।
 - (111) छन्द सम्बन्धी मान्यताएँ—
चौपाई, चौपई, दोहा, तीनों का जायसी द्वारा प्रयोग ।
- २—तत्कालीन प्रचलित सामाजिक मान्यताएँ ।

III पद्मावत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और कथावस्तु ।

भिन्न-भिन्न कथानकों का जायसी द्वारा मिश्रण ।

IV पद्मावत में अलौकिक तत्त्व—

V जायसी का प्रबन्ध-कौशल—

पद्मावत में प्रबन्ध निर्वाह व मुक्तकत्व ।

„ „ सवाद व नाटकीयता ।

पद्मावत एक अन्योक्ति है । पद्मावत एक प्रतीक है । पद्मावत एक समासोक्ति है अथवा रूपक है ।

VI पद्मावत में रस-निष्पत्ति—

भाव-विचार

विभाव-विचार—१. आनन्दन एव आश्रय (चरित्रचित्रण)

२ उद्दीपन अथवा प्रकृति चित्रण,

अनुभाव

संचारी भाव

VII परिशिष्ट—

- १ बामसी का जीवन वृत्त ।
- २ पद्यावत के कुछ विशिष्ट छन्द—
 - (a) सृष्टीमठ के पारिभाषिक छन्द ।
 - (b) प्रादेशिक छन्द ।
 - (c) भयभ्रंश के छन्द ।

क्यरेखा तं २ तथा १

पद्मावत का सांस्थ्रीय व साहित्यिक दृष्टि से मूल्यांकन

- I परिशिष्ट में बामसी {
- बामसी का युग—
 - राजनैतिक परिस्थितियाँ* और उनका इतिहास
 - धार्मिक परिस्थितियाँ*
 - धार्मिक व साहित्यिक विचार धाराएँ ।

- * I भूमिका
- * १ पद्यावत का महत्त्व [इतिहासो प्रादि से]
- * २ पद्यावत के अध्ययन की परंपरा—प्रत्येक अध्ययन की विशेषता
- * ३ पद्यावत के नये अध्ययन की आवश्यकता और इस अध्ययन का महत्त्व

II (अ) पद्यावत की कथावस्तु—

- (a) मुख्य कथा
- (b) प्रकान्तर कथाएँ
- (c) कथा का साठ—
- (i) ऐतिहासिक

- * (ii) लोक-वार्ता विषयक तथा

- * (iii) कल्पना प्रयुक्त

- (d) कथाओं में परस्पर सम्बन्ध निर्वाह
- मीकिक पथ व प्रतीकिक पथ एवं इन दोनों का निर्वाह ।

- * (e) पद्यावत की कथानक कड़ियाँ और उनका परंपरा तथा बामसी में उनके उपयोग की शार्फकता ।

- (f) खेती—मसनवी कथा भारतीय

- * (ग) कथा तथा पात्र—

- * (A) मुख्य कथा के पात्र—विपन्न—उनका नायक-नायिका घेद के लक्षणों के अनुसार तथा स्वतंत्र विकल्प-तरंग और उनका मनोविज्ञान

- * (b) प्रकान्तर कथाओं के पात्र उनका चित्रण उनका मनोविज्ञान

- * (c) पात्रों का मध्यस्थ उनका सांस्थ्रीय धारण और रूप

III पद्यावत में रस निरूपण—

- * (a) पद्यावत का प्रपात रस

- * (b) अन्य रस और उनका प्रधान रस से मवध
- * (c) पद्यावत में शृंगार रस
 - (i) मयोग वणन
 - (ii) वियोग वर्णन—(1) वियोग के रूप, पूर्वानुराग आदि ।
(2) कामदशाओं का चित्रण
 - (iii) वियोग में भारतीयता एवं विदेशीयन
- * (iv) पद्यावत में स्थायी भावों की स्थिति कहा कहाँ और कैसे
- * (v) पद्यावत में विभावों के स्थल और उनका स्वरूप
- * (vi) पद्यावत में संचारियों के स्थान, नाम तथा प्रयोग
- * (vii) पद्यावत के अनुभावों की सूची, उनके स्थल और उपयोग
- * (viii) पद्यावत में गार्त्विक भाव
- * (ix) पद्यावत में हाव-भाव
- * (x) पद्यावत और कामशास्त्र

IV पद्यावत में अलंकार योजना—

- (a) पद्यावत के उपमान ।
- (b) जायसी की अलंकार सम्बन्धी मौलिकता ।

V पद्यावत में छंद-योजना—

चौपाई-दोहे की परिपाटी एवं उसकी गीतात्मकता,

- *VI पद्यावत में गुण-दोष
- *VII पद्यावत में औचित्य विचार
- VIII पद्यावत में *संस्कृति का स्वरूप
- IX पद्यावत में प्रकृति-निरूपण,
- X पद्यावत में दर्शन-तत्त्व—

सूफीमत, रहस्यवाद, इस्लामी विचारधारा आदि,

XI पद्यावत में लोक-जीवन—

लोक कथाएँ

लोक गीत

तत्कालीन समाज का चित्रण

जन-प्रचलित मान्यताओं व धारणाओं का समावेश ।

XII पद्यावत की भाषा —

- (a) लोकोक्ति व मुहाविरें
- (b) व्यजनाशक्ति
- (c) व्याकरण

*XIII पद्यावत का काव्यत्व प्रबधत्व, महाकाव्यत्व, शैली, अन्योक्ति, प्रतीक, आदि

*XIV पद्यावत का ज्ञानकोष और उसके शास्त्रीय स्रोत

XV उपसंहार—मूल्यांकन—

परिचिष्ट

- (a) जामसो का जीवन-वृत्त
 *(b) जामसी का मुन (केलिये ऊपर प्रथम प्रश्नात्)
 (c) पपावत के विभिष्ट पत्र
 (d) गूफेमत के पारिभाषिक पत्र । अथवा के तथा प्रादेशिक पत्र ।
 *(e) इष्टात तथा सप्तमित कथाओं की सूची और परिचय ।

इसी प्रकार मुम्माज राम विषयक नीचे की यही रूपरेखा तथा इसके संसोधनों की देखिये—

मुम्माज राम और उसका अध्ययन

धर्मात् मुम्माज राम का आलोचनात्मक सम्पादन भाषा वैज्ञानिक टिप्पणियों सहित कठिन प्रयासों एवं ऐतिहासिक साहित्यिक तथा भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन युक्त प्रस्तावना ।

पंख १

मुम्माज राम का अध्ययन

- * १ रामो साहित्य क राम धीर रामो काव्य
 म हिरी रामो साहित्य
 म रामस्थानी रामो साहित्य
- * २ रामो साहित्य की विवेकताएँ ।
- ३ मुम्माज राम एवं उत्कृष्टपिठ प्रातिवर्ष

* यह धीरक इस अध्ययन के पंख में जाना पाइये क्योंकि अध्ययन का उद्देश्य प्रमुख है धर्मधर्मी प्रातिवर्षों का निराकरण प्रथम उद्देश्य नहीं । इनकी भाषा भी छीक की जानी पाइये 'एकम् उत' से हो पत्र आत्मक तथा धनराशिक पत्र है ।

- * १ मुम्माज राम के सम्पादन तथा अध्ययन की आवश्यकता भूमिका ।
- २ (घ) मुम्माज राम का सम्प-काँ उलका जीवन परिचय इतिहास एवं प्रातिवर्ष ।
 *(इसके अर्थ में धर्म तथा बाह्य साहित्य की परीक्षा तथा निष्कर्ष)
- (घ) मुम्माज राम का रचनाक्रम ।

- ३ मुम्माज राम का विषय ।
- * ४ मुम्माज राम की वस्तु में ऐतिहासिक एवं धीर उसकी प्रातिवर्षता । उत्पत्तीक
- * ५ मुम्माज राम में इति उत्पत्ती का भाव मनुष्य का रूप धीर उसकी उपपत्तीक ।
- ६ मुम्माज रामा की मन्त्रादिक कथाओं का कोण धीर मुम्माज ।
- ७ मुम्माज रामा में माकालक निम्न इष्टिता में—
 व - तथा भाव में ।

*आ—लोकोक्तियो तथा प्रवादो और दृष्टान्तो में ।

*इ—विविध लोक विश्वास

८ खुम्माण रास में साहित्यिक सौष्ठव ।

क प्रबन्ध-कल्पना एव वस्तु-योजना में ।

ख वस्तु वर्णन में ।

ग भाव-व्यजना-एव रसात्मकता में ।

घ अलंकार-योजना में ।

ङ छन्द-योजना में, खुम्माण रास में प्रयुक्त छन्द (१) सस्कृत छन्द, (२) प्राकृत छन्द (३) पिंगल छन्द (४) डिंगल छन्द, (५) लोक-क्षेत्र से गीत, निशानी आदि ।

च चरित्र-चित्रण ।

*६ खुम्माण रासो में (अ) भाव-सपत्ति तथा (आ) ज्ञान-सपत्ति

१० खुम्माण रास की भाषा ।

१ भाषा-जाति—राजस्थानी, यत्र तत्र पिंगल, ब्रज भाषा तथा गुजराती-प्रयोग, प्राकृत और सस्कृत ।

२ रास की भाषा का विवेचन—शब्द-समूह, विदेशी शब्द, ध्वनि-विकास शब्द-निर्माण । (उपसर्ग और प्रत्यय) व्याकरण, सज्ञा, वचन, जाति लिंगकारक, विभक्ति, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया, क्रिया-रूप, अव्यय ।

*३ रास की भाषा का अर्थ-तत्त्व की दृष्टि से विवेचन ।

४ खुम्माणरास सम्बन्धित अन्तियाँ ।

१ रासो काव्यो में खुम्माण रास का स्थान ।

परिशिष्ट

१ सबसे आरम्भ के पुष्पांकित (×) अक्षर यहाँ परिशिष्ट में आने चाहिये । क्योंकि हम 'ग्रथ' का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं । रासो विषयक परिभाषा तथा परिचय सामान्य सामग्री है । अतः यह आरम्भ में अनिवार्य नहीं ।

२ सहायक ग्रथ ।

खण्ड २

मूल ग्रथ

१. उपेक्षात

क मूल प्रति का परिचय, पत्राकार, पत्र-संस्था आदि ।

ख प्रति का लिपिकार, लिपिकाल, लिपि

ग चित्र एव भावानुकूलता

*२ संपादन के सिद्धान्त

१ मूल ग्रन्थ—शासोचनात्मक सम्पादन

४ पाठ-टिप्पणियाँ—कठिन शब्दों की व्युत्पत्ति एवं भाषा वैज्ञानिक टिप्पणियों सहित सम्पादन ।

*परिशिष्ट

*१ शब्दानुक्रमिका

२ मूलनिका ।



श्रुतिका मुख्य विषय और परिशिष्ट में एक अपेक्षित संतुलन होना बहुत आवश्यक है, यह बात यहाँ तक स्पष्ट हो चुकी होती । पर रूपरेखा इतनी उबसी या एकान्ती भी नहीं होगी चाहिये कि उसे रूपरेखा का नाम ही न दिया जा सके । एसी रूपरेखाओं से मार्ग दर्शन क्या हो सकेगा ! उदाहरणार्थ यह रूपरेखा सी वा सकृती है ।

विषय हिन्दी के प्राधुनिक नाटक-साहित्य में परम्परा और प्रयोग

प्रथम अध्याय—परम्परा और प्रयोग की परिभाषा तथा परिपाटी—

द्वितीय अध्याय—प्रस्तुत काल से पूर्व के नाटक-साहित्य में परम्परा एवं प्रयोग सम्बन्धी पृष्ठभूमि ।

तृतीय अध्याय—आर्योत्तम युग—कथावस्तु सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग चरित्र चरित्र सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग कथोपकथन सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग बेषकाल सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग भाषा एवं शैली सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग उद्देश्य सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग रस सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग अभिनय सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग ।

चतुर्थ अध्याय—प्रसाद युग—कथावस्तु सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग चरित्र-विशेष सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग कथोपकथन सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग बेषकाल सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग भाषा एवं शैली सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग उद्देश्य सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग रस सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग अभिनय सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग ।

पञ्चम अध्याय—प्रसादोत्तर युग—कथावस्तु सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग चरित्र विशेष सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग कथोपकथन सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग बेषकाल सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग भाषा एवं शैली सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग उद्देश्य सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग रस सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग अभिनय सम्बन्धी परम्परा और प्रयोग ।

षष्ठ अध्याय—समाहरण ।

यह अत्यन्त उबसी रूपरेखा है । इसे यदि निम्नलिखित रूप दिया जाय तो कुछ पूर्ण हो सकती है ।

हिन्दी के आधुनिक नाटक-साहित्य में परम्परा और प्रयोग

१ आधुनिक युगपूर्व भारतीय नाटक-साहित्य में परम्परा और प्रयोग का सहावलोकन—परम्परा का स्वरूप तथा प्रयोगों की स्थिति । विविध प्रयोगों का इतिहास तथा विविध शास्त्रीय परम्पराएँ और रूढ नाटकीय परिपाटियाँ । परम्परा और प्रयोग की पृष्ठभूमि में साहित्य की मेधा का स्वरूप ।

२ आधुनिक हिन्दी नाटक-साहित्य का सर्वेक्षण—विविध भारतीय नाटक परम्पराओं की दृष्टि से आधुनिक नाटक साहित्य का वर्गीकरण—हिन्दी नाटक के साहित्य में मिलनेवाले परम्परा के समग्र तत्वों का कोश—प्रत्येक तत्व की हिन्दी के आधुनिक नाटकों में स्थिति—उसका विकास या ह्रास-उस विकास या ह्रास के स्वरूप तथा कारणों का अनुसंधान—

३ विविध अ भारतीय नाटक परम्पराओं की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-नाटक-साहित्य का वर्गीकरण—हिन्दी नाटक-साहित्य में मिलने वाले समग्र अ भारतीय नाटक परम्परा के तत्वों का कोश—इन तत्वों की आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोग की स्थिति का सक्षिप्त इतिहास ।

४ (अ) उन परम्पराओं का उद्धाटन जो मूलतः हिन्दी नाटकों की अपनी परम्पराएँ हैं ।

(आ) आधुनिक हिन्दी नाटकों में इन तीनों परम्पराओं की तुलनात्मक स्थिति ।

५ आधुनिक हिन्दी नाटकों में होनेवाले प्रयोगों का सर्वेक्षण—समस्त प्रयोगों का प्रकार और युगों में वर्गीकरण - प्रकार शिल्प-विधान सबधी, आरम्भ-श्रुत सबन्धी, दृश्य-विधान सबधी, सामग्री-चयन सबधी, सवाद-सवोधन सबधी, संगीत-नृत्य सबधी, पात्र-वेश, प्रयोग-प्रस्थान सबन्धी, रग-सम्बन्धी आदि ।

६ (अ) प्रत्येक प्रयोग की पृथक्-पृथक् प्रयोग कालीन स्थिति और आयु । इन प्रयोगों का मूलस्रोत १—भारतीय परम्परा से उद्भूत २—अ भारतीय परम्पराओं से उद्भूत ३—व्यक्तिगत साहित्यकार की मेधा की उद्भूति ४—लोक-क्षेत्र से ग्रहीत । (आ) १—वे प्रयोग जो अत्यन्त अस्थायी रहे २—वे प्रयोग जो कुछ काल तक चल ३—वे प्रयोग जो अपनी परम्परा खड़ी कर सके । प्रत्येक की पृष्ठभूमि का सर्वेक्षण तथा विश्लेषण ।

७ इन प्रयोगों और परम्पराओं का पारस्परिक सबन्ध ।

८ निष्कर्ष ।

जहाँ यह आवश्यक है कि 'रूपरेखा' यथामभव पूर्ण हो वहाँ यह भी आवश्यक है कि उसका क्रम लाजिकल, वैज्ञानिक पूर्वापर प्रक्रिया से युक्त हो ।

इन बातों की ओर सकेत करने के लिए यहाँ दो रूपरेखाओं पर दो विमर्श दिये जा रहे हैं—

(१)

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास

“हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास (१) विषय पर दी गई रूपरेखा सतोपजनक नहीं है । इसमें चार अध्यायों में समूचे विषय को विभाजित करके लिखने का सकल्प

प्रकट किया है। तीसरे अध्याय (ब्रह्मण्ड) (मनूविरत उपन्यास) प्रभावशालक है। बिना उपन्यासों और उनके अनुशासों ने हिन्दी उपन्यासों को प्रेरणा दी है उनकी चर्चा यथा प्रसन्न होना ही उचित है। उनकी प्रसन्न से चर्चा करने के लिए एक प्रसन्न अध्याय की योजना मुझे प्रभावशालक जान पड़ती है। वस्तुतः अनुशास हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहें जा सकते। वे अपनी-अपनी मूल भाषाओं के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। उनकी चर्चा प्रसंगात्त विषय के रूप में ही हो सकती है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एम ए कक्षा के बीसिस के रूप में एक विद्यार्थी ने इस विषय पर कार्य किया है। वह बीसिस प्रश्न पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रही है। प्रस्तुत रूपरेखा में उससे धार्य करने का कार्य प्रयास नहीं दिखायी देता।

प्रस्तुत रूपरेखा से यह भी पता नहीं चलता कि प्रार्थी कौन सा नया खोज (Discovery of New facts) या पुरानी बातों की कौनसी नयी व्याख्या प्रस्तुत करते जा रहा है।”

(२)

दोहा छन्द का उदय और विकास

As regards synopsis it has got many shortcomings

(1) The chapters are not Logically arranged e. g history of Doha in Hindi Literature should be put after the 1st chapter and not at the 10th place. So also chapter 5 दोहों की शब्द परम्परा either should be included in the chapter I विश्व प्रवेश or may be given III place in the order of this chapter

(2) Some important things are either left-out or given a very unimportant thought (a) no mention is made of Ganas in Rachnatatwa, nor there is a mention of Ras anywhere in the synopsis While discussing लयन I think, the suitability of Doha for some Rasas had to be discussed. (b) numerous varieties of Dohas mentioned in Chhand Shastras and liberty of Hindi writers in using them attracts one's attention. This factor should have been assigned a separate chapter entitling दोहों के विविध भेद एवं लयन सहित and there in various causes leading to this plurality of varieties should have been discussed (c) Doha has been a living Chhand in Hindi, hence it was essential to show what flaws or beauties have crept up in its usages by various poets It would also be very useful in investigation to show if there are some poets who have constructed some new variety of Dohas

(3) Some topics are ambiguous दोहों के रचना-तत्वों की तुलनात्मक परीक्षा, नए दोहों का प्रयोग किसमें

(4) Some topics are unnecessary such as. कै-सिन्धी मर्यादा में दोहों की रचना if the candidate likes he may give some information in the form of an Appendix.

(v) The details of topics too are at places ambiguous or far-fetched, or irrelevant or unnecessary

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि रूपा-रेखा के मध्य में सत्र से अधिक ध्यान देने योग्य बातें ये हैं —

१ भूमिका-भाग में मुख्य-विषय से धनिष्ठ रूपेण सप्रथित प्रारम्भ में ज्ञातव्य बातें ही प्रानी चाहिये । भूमिका छोटी से छोटी होनी चाहिये ।

२. प्रधानता मुख्य-विषय को मिलनी चाहिये ।

३ जिन बातों का विशेष उल्लेख किन्हीं कारणों से अपेक्षित हो, और वे बातें न तो भूमिका में स्थान पा सकें न मुख्य भाग में, तो ऐसी बातों का उल्लेख परिशिष्टों में किया जा सकता है ।

४ रूप-रेखा में बातों को पूर्वापर क्रम (ताजिकल ग्राडर) में रखा जाना चाहिये ।

५ अनावश्यक बातें विकुल भी सम्मिलित नहीं की जानी चाहिये ।

६. रूप-रेखा निर्धारित विषय की सीमा से बाहर नहीं जानी चाहिये ।

७ रूप-रेखा से यह स्पष्ट विदित हो सकता चाहिये कि इसमें नये अनुसंधान के लिए बहुत अवकाश है । वह एक सामान्य लोक-शक्ति के लिए प्रस्तुत होने वाले ग्रन्थ की विषय-सूची के रूप में नहीं होनी चाहिये ।

८ रूपरेखा के साथ पुस्तक-सूची (Bibliography) भी दी जानी चाहिये ।

किन्तु, इतने विवेचन से यह बात भी प्रतिभासित होती है कि “रूपरेखा” ठीक-ठीक तब तक तैयार नहीं की जा सकती, जब तक कि अनुसंधाता अपने विषय और तत्सवधो प्रायः समस्त सामग्री से पूरी तरह परिचित नहीं हो जाता । दूसरे शब्दों में उसे अपने अनुसंधान की प्रारम्भिक अवस्था सपन्न कर लेने के बाद ही रूपरेखा प्रस्तुत करनी चाहिये । किन्तु विश्वविद्यालयों में रूपरेखा प्रारम्भ में ही माँगी जाती है । इस प्रणाली से परिणाम यह होता है कि अनुसंधाता दूसरों से रूप-रेखा प्रस्तुत कराता है । और रूपरेखा बनाने वाले का दाम हो जाता है, क्योंकि पद-पद पर उसे रूपरेखा को समझने के लिए उसके पास दौड़ना पड़ता है । रिसच यदि अनुसंधान है तो उसका स्वरूप तो अनुसंधान करते-करते ही स्पष्ट होगा । प्रारम्भ में ही उसे कैसे प्रस्तुत किया जा सकता है ।

इस दृष्टि से समीचीन यह प्रतीत होता है कि “विश्वविद्यालय” केवल विषय’ को ही स्वीकार करें । विषय के साथ यह उल्लेख मात्र रहे कि अनुसंधाता उस विषय के अनुसंधान को क्यों महत्त्वपूर्ण मानता है, और क्यों उसमें प्रवृत्त होना चाहता है । यदि इतने से ही सतोप नहीं हो तो, विषय के साथ अनुसंधान की योजना (Scheme) ही माँगी जानी चाहिये ।

अनुसंधान योजना—

अनुसंधान की योजना में केवल उन माँगों (Steps) का ही उल्लेख होना चाहिये जिनके द्वारा अनुसंधान किया जायगा । उदाहरणार्थ “खुमाणरासो का अनुसंधान” ।

प्रकट किया है। तीसरे अध्याय (स पद्य) (प्रचुरित उपन्यास) प्रभावशालक है। जिन उपन्यासों और उनके अनुवादों ने हिन्दी उपन्यासों को प्रेरणा दी है उनकी प्रशंसा तथा प्रसंग होना ही उचित है। उनकी प्रशंसा से प्रेरणा करने के लिए एक प्रसंग अध्याय की योजना मुझे प्रभावशालक जान पड़ती है। वस्तुतः अनुवाद 'हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास' नहीं कहे जा सकते। वे अपनी-अपनी मूल भाषाओं के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। उनकी प्रशंसा प्रसंगानुसृत विषय के रूप में ही हो सकती है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एम ए कक्षा के बीसिस के रूप में एक विद्यार्थी ने इस विषय पर कार्य किया है। यह बीसिस का पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रही है। प्रस्तुत रूपरेखा में उससे ध्यान बढ़ने का कोई प्रयास नहीं दिखायी देता।

प्रस्तुत रूपरेखा से यह भी पता नहीं चलता कि प्रार्थी कौन सा नया खोज (Discovery of New facts) या पुरानी बातों की कौनसी नयी व्याख्या प्रस्तुत करने जा रहा है।"

(२)

दोहा छन्द का उदय और विकास

As regards synopsis It has got many shortcomings

(i) The chapters are not Logically arranged e. g history of Doha in Hindi Literature should be put after the 1st chapter and not at the 10th place. So also chapter 5 दोहों की उत्पत्ति तथा either should be included in the chapter I जिस प्रवेश or may be given III place in the order of this chapter

() Some important things are either left-out or given a very unimportant thought (a) no mention is made of Ganas in Rachnatatwa, nor there is a mention of Ras anywhere in the synopsis. While discussing लयाव, I think, the suitability of Doha for some Rasas had to be discussed. (b) numerous varieties of Dohas mentioned in Chhand Shastras and liberty of Hindi writers in using them attracts one's attention This factor should have been assigned a separate chapter entitled दोहों के विभिन्न भेद तथा लयाव शक्ति and there in various causes leading to this plurality of varieties should have been discussed. (c) Doha has been a living Chhand in Hindi hence it was essential to show what flaws or beauties have crept up in its usages by various poets. It would also be very useful investigation to show if there are some poets who have constructed some new variety of Dohas

(iii) Some topics are ambiguous दोहों के रचना-तत्वों की तुलनात्मक परीक्षा का दोहों का प्रयोग विज्ञान

(iv) Some topics are unnecessary such as ऐत-हिन्दी लयाव में दोहों की परीक्षा if the candidate likes he may give some information in the form of an Appendix.

(v) The details of topics too are at places ambiguous or far-fetched, or irrelevant or unnecessary

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि रू-रेखा के सबध में सब से अधिक ध्यान देने योग्य बातें ये हैं —

१ भूमिका-भाग में मुख्य-विषय से घनिष्ठ रूपेण सवधित प्रारभ में ज्ञातव्य बातें ही आनी चाहिये । भूमिका छोटी से छोटी होनी चाहिये ।

२ प्रधानता मुख्य-विषय को मिलनी चाहिये ।

३ जिन बातों का विशेष उल्लेख किन्ही कारणों से अपेक्षित हो, और वे बातें न तो भूमिका में स्थान पा सकें न मुख्य भाग में, तो ऐसी बातों का उल्लेख परिशिष्टों में किया जा सकता है ।

४ रूप-रेखा में बातों को पूर्वापर क्रम (लाजिकल आर्डर) में रखा जाना चाहिये ।

५ अनावश्यक बातें बिल्कुल भी सम्मिलित नहीं की जानी चाहिये ।

६ रूप-रेखा निर्धारित विषय की सीमा से बाहर नहीं जानी चाहिये ।

७ रूप-रेखा से यह स्पष्ट विदित हो सकना चाहिये कि इसमें नये अनुसंधान के लिए बहुत अवकाश है । वह एक सामान्य लोक-रुचि के लिए प्रस्तुत होने वाले ग्रथ की विषय-सूची के रूप में नहीं होनी चाहिये ।

८ रूपरेखा के साथ पुस्तक-सूची (Bibliography) भी दी जानी चाहिये ।

किन्तु, इतने विवेचन से यह बात भी प्रतिभासित होती है कि “रूपरेखा” ठीक-ठीक तब तक तैयार नहीं की जा सकती, जब तक कि अनुसंधाता अपने विषय और तत्सबधी प्रायः समस्त सामग्री से पूरी तरह परिचित नहीं हो जाता । दूसरे शब्दों में उसे अपने अनुसंधान की आरम्भिक अवस्था सपन्न कर लेने के बाद ही रूपरेखा प्रस्तुत करनी चाहिये । किन्तु विश्वविद्यालयों में रूपरेखा आरम्भ में ही माँगी जाती है । इस प्रणाली से परिणाम यह होता है कि अनुसंधाता दूसरों से रूप-रेखा प्रस्तुत कराता है । और रूपरेखा बनाने वाले का दास हो जाता है, क्योंकि पद-पद पर उसे रूपरेखा को समझने के लिए उसके पास दौड़ना पड़ता है । रिसर्च यदि अनुसंधान है तो उसका स्वरूप तो अनुसंधान करते-करते ही स्पष्ट होगा । आरम्भ में ही उसे कैसे प्रस्तुत किया जा सकता है ।

इस दृष्टि से समीचीन यह प्रतीत होता है कि “विश्वविद्यालय” केवल विषय को ही स्वीकार करें । विषय के साथ यह उल्लेख मात्र रहे कि अनुसंधाता उस विषय के अनुसंधान को क्यों महत्त्वपूर्ण मानता है, और क्यों उसमें प्रवृत्त होना चाहता है । यदि इतने से ही सतोष नहीं हो तो, विषय के साथ अनुसंधान की योजना (Scheme) ही माँगी जानी चाहिये ।

अनुसंधान योजना—

अनुसंधान की योजना में केवल उन मार्गों (Steps) का ही उल्लेख होना चाहिये जिनके द्वारा अनुसंधान किया जायगा । उदाहरणार्थ “खुमाणरासो का अनुसंधान” ।

१ लुमाचरास की एक प्रति मिलती है। अन्यप्रतियों की भी धात्र की जायगी।

२ (घ) प्राप्त प्रतियों के आधार पर पाठानुसंधान (Textual Criticism) के विज्ञान के अनुसार पाठानुसंधान पूर्वक धात्रक पाठ प्रस्तुत करना। इस की भूमिका में इस रास विषयक सुझावन का समस्याधा पर साक्षात्करण सम्प्रमाण प्रकाश डाला जायेगा।

(घा) लुमाच रासों के काल निर्णय के उपरांत उस काल की उसी क्षेत्र की और उसी भाषा की अन्य कृतियाँ को भी रासा की भाषा से तुलना करने के लिए सम्भव क्रिया जायगा। त्रिमय तत्कालीन भाषा की प्रकृति से रासों का सामञ्जस्य स्थापित किया जा सके।

३ इसके अनंतर इस रासों का ऐतिहासिक सम्बन्धन किया जायगा। रासोकार के ज्ञान की सामग्री भी खोजी जायगी उसकी अन्य कृतियों का भी पठन किया जायगा और यदि मिलेगी तो इस रासों के साथ उनके कतिपय का भी स्वरूप प्रस्तुत किया जायगा। आदि

किन्तु यदि यही अभीष्ट हो कि पूरी रूपरेखा ही प्रस्तुत की जाय तो विश्वविद्यालयों को अपने नियमों में यह धारा बढ़ानी चाहिये कि पहले विषय स्वीकृत होना तदनुसार ६ महीने के अन्दर अनुसंधान को अपनी रूपरेखा प्रस्तुत करनी होगी। उसके स्वीकार हो जाने पर अनुसंधान अपना अनुसंधान धार्ये बढ़ायेगा।

सबसे अधिक समीचीन तो यही प्रतीत होता है कि केवल विषय मात्र ही स्वीकार किया जाय।

रूपरेखा के अन्तर्ग में मने अपना अभिमत प्रेषित कर दिया है। अब मैं धात्र सब को अभ्युदाय देता हुआ अपना धात्र का भाव्य समाप्त करता हूँ।

“डिगल का गद्य-साहित्य”

डिगल राजस्थान की साहित्यिक भाषा है, विशेषकर आधुनिक-युग में डिगल को कविता की एक शैली के रूप में समझा जाता है। वर्तमान में डिगल कविता का एक रूढ-स्वरूप हमारे सामने उपस्थित है तदापि प्राचीन राजस्थानी में डिगल की रूपात्मक एव ध्वन्यात्मक विशेषताएँ परिलक्षित हैं। विद्वानों ने डिगल को प्राचीन राजस्थानी का सुसंस्कृत, परिमार्जित एव साहित्यिक रूप माना है।

आरम्भ में साधारण राजस्थानी और डिगल में कोई अन्तर न रहा हो, परन्तु बाद में डिगल स्थिर हो गई हो। कविगण जानबूझ कर द्वितवर्ण वाले शब्दों का प्रयोग किया करते थे और इसी प्रकार साधारण शब्दों को भी तोड़ा-मरोड़ा जाने लगा, साथ ही उनके “कुछ विशेष शब्द” आकार-प्रकार में बध गये जिनका प्रयोग निरंतर किया जाने लगा। परन्तु साधारण बोलचाल की राजस्थानी में ऐसे शब्दों का कोई प्रचुर प्रयोग नहीं होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि डिगल साधारण जनता की बोध-सीमा के बाहर हो गई तथा एक विशिष्ट वर्ग (कवियों की) की ही भाषा-मात्र बन गई।

विक्रम की १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक न्यूनाधिक रूप से राजस्थानी का प्रयोग गुजरात, मध्यप्रदेश व राजस्थान के भागों में सर्वत्र होता था, परन्तु १६वीं शताब्दी से इन प्रदेशों के राजनैतिक सीमा-रेखाओं में बध जाने पर उसके रूप में प्रान्तीय प्रभाव लक्षित होने लगा और भिन्न प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होने लगी। विक्रम की १७वीं शताब्दी से जब राजस्थानी-साहित्य को लिपिवद्ध किया जाने लगा तो वह साधारणतः बोलचाल की राजस्थानी भाषा में ही हुआ, फिर भी उसमें परम्परागत डिगल सबधी शब्दों को देखा जा सकता है। इस प्रकार साहित्य के विभिन्न अंगों की रचना इसमें हुई और प्रचुर मात्रा में हुई, जिसमें गद्य-साहित्य का विशिष्ट एव महत्वपूर्ण स्थान है।

राजस्थान में रचित गद्य-साहित्य को राजस्थान के आधुनिक विद्वान राजस्थानी-भाषा की ही रचना मानते हैं, डिगल की नहीं—क्योंकि वह साहित्य उस युग की जन-वाणी में लिखा गया था, द्वितवर्ण वाले शब्दों से युक्त डिगल में नहीं? गद्य सबधी साहित्य जिसे राजस्थानी भाषा में लिखा माना जाता है स्यात, वात, वचनिका, विगत,

रवाबत बंसावसी पीढिया पट्टपरबाने प्रादि के रूप में उपलब्ध है। इस गद्य की सम्पूर्ण सामग्री राजस्थान के विविध राजकीय पुस्तकालयों में सुरक्षित है। इसके प्रतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से कन्न पारबन भाटों एवं राज्यों के पास यह सामग्री खोजी जा सकती है। राजस्थानी गद्य सम्बन्धी जो सामग्री अभी तक प्रकाश में आई है वह सब राजकीय पुस्तकालयों में प्राप्य है। डा. लीटोरी एन एं हरप्रभाब सास्त्री ने अपनी रिपोर्ट में गद्य संबंधी सामग्री की खोजपरक जानकारी दी है, पर वह विवरण पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

द्विगस का गद्य-साहित्य विस्वविद्यालय की 'अनुसंधान समिति' के द्वारा जब स्वीकार कर लिया गया तब सर्व प्रथम मेरी यह भारणा बनी कि तत्संबंधी सामग्री जिन जिन राजकीय पुस्तकालयों में सुरक्षित है उसकी एक विस्तृत सूची बना ली जाय तथा यह समय हो सके तो उनका प्रारम्भिक ध्वनोकन-प्राप्ययन कार्य भी किया जाय। सर्व प्रथम इसी धोर मेरा ध्यान केन्द्रित हुआ क्योंकि गद्य संबंधी सामग्री अधिकतर इन राजकीय पुस्तकालयों में इस्तित्विधित धंशों के रूप में विद्यमान है, जिनके प्राप्ययन के लिये विशेष समय एवं सुविधा अपेक्षित है। विचारकर इनके प्राप्ययन के लिये उन्हीं स्थानों पर जाकर प्राप्ययन किया जायेगा क्योंकि इन धंशों का पुस्तकालय-रूप से बाहर से जाने की अनुमति मिलना असाध्यभर है। केबल बीकानेर के 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय' में यह सुविधा प्राप्य है जिसके अनुसार इनकी सुरक्षा का एक विशेष स्टाप्ययन अरणा पड़ता है तथा एक समय में एक इस्तित्विधित ग्रन्थ प्राप्य किया जा सकता है।

सर्व प्रथम ११ मार्च सन १९५८ को मैं अजमेर से कोटा लू ली अहाबपुर प्रादि स्थानों की ओर गया तथा ता १६ मार्च को पुन अजमेर सौट प्राया। यह कार्य कम केवल ६ दिवसों का ही रहा कारण कि इनर गद्य संबंधी सामग्री उपलब्ध नहीं हुई। कोटा के राजकीय पुस्तकालय में कुछ राजस्थानी में किए गये अनुबाब प्राप्य हुए जो १७वीं सताब्दी के पश्चात के हैं। कोटा के एक जैन उपासरे में जैन विद्वानों की कुछ रचनामें पद्य में लिखी हुई है जो बालिक उपदेधपरक है। इसके प्रतिरिक्त कोटा में और कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हुई और न ही अन्य स्थानों पर प्राप्य हो सकी।

राजस्थानी गद्य सम्बन्धी सामग्री मुख्यतया बाघोंमें स्थात बंसावसी प्रादि जयपुर के पुरातत्त्व-मंथिर जोधपुर के उम्मेद मदन के 'पुस्तक प्रकाश' पुस्तकालय उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय-सरस्वतीभवन तथा बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय-असय जैन प्रस्थापय तथा अन्य जैन उपासरो में मिलिबद्ध रूप में सुरक्षित है। श्रीम्भाबकास के के धारम्भ होने के साथ ही मैं इन चार प्रमुख स्थानों (जयपुर, जोधपुर, उदयपुर और बीकानेर) की ओर जाने का निश्चय किया। अंतसमेर के राजकीय पुस्तकालय में पद्य संबंधी सामग्री उपलब्ध है, एसा जानकर मुना से विरिध हुआ। अंतसमेर की ओर इस भीषण बर्षों में जाना मैंने स्थिति किया और वहाँ अर्पकाल के पश्चात ही जाना ठीक समझा।

जिन चार स्थानों की ओर मैं गया उनका विवरण संक्षेप में इस प्रकार है —

जोधपुर

ता० १३ मई ५८ को अजमेर से प्रस्थान कर १४ मई को प्रात ८-३० पर जोधपुर पहुँच गया ।

ता० १४ मई को प्रात काल ११ बजे “सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी” जाकर वहाँ के पुस्तकाध्यक्ष श्री बी० एन शर्मा से सम्पर्क स्थापित किया व उनसे विषय-सबधी चर्चा की । “सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी” में “मुहुणोत नैणसी रीख्यात दो भाग” तथा “मारवाड रीख्यात” की हस्तलिखित प्रतिया देखने को मिली । लिपिकार ने दोनो प्रतियो में अपना नाम व लिपिकाल का उल्लेख नहीं किया है । इन दोनो प्रतियो को देखने पर अनुमान लगाया गया कि इनका लिपिकाल १६वीं शताब्दी के आस पास रहा होगा । “मारवाड की ख्यात” में मारवाड के राठौर राजवशो से सबधित फुटकर वार्तायें लिपिवद्ध हैं । पश्चात श्री शर्मा के साथ वहा पर स्थित म्यूजियम गया तथा अध्यक्ष महोदय से भेंट की ।

श्री बी० ए० शर्मा से विदित हुआ कि जोधपुर नरेशो का निजी पुस्तकालय जो “पुस्तक-प्रकाश” के नाम से विख्यात है आजकल “उम्मेद-भवन” (छोतर पेलेस) में सुरक्षित रखा हुआ है । वहाँ के ग्रन्थो का अध्ययन करने के लिये “पेलेस” के ऐडमिनिस्ट्रेटर महोदय से अनुमति लेना आवश्यक है, “पेलेस” नगर से तीन मील की दूरी पर है । अतएव श्री शर्मा के साथ जीप का प्रवन्ध करके हम “पेलेस” पहुँचे । वहा पहुँचने पर हैड क्लर्क से ज्ञात हुआ कि ऐडमिनिस्ट्रेटर महोदय अपना कार्य करके जा चुके हैं । उनका कार्य-काल १०-३० से मध्याह्न १-३० तक का है । हैड क्लर्क महोदय श्री तपसीलाल से ज्ञात हुआ कि गद्य सबधी सामग्री पर्याप्त मात्रा में यहा पर उपलब्ध है । उन्होने हमें ‘पेलेस’ दिखाने का प्रवन्ध किया । बातचीत के अन्तर्गत काफी बातो की जानकारी हासिल हुई ।

ता० १५ मई को लगभग १२ बजे मैं ‘पेलेस’ पहुँच गया तथा ऐडमिनिस्ट्रेटर महोदय से भेंट की तथा अपने अनुसंधान सबधी कार्य से उनको अवगत कराया एव लिखित रूप में ‘पेलेस’ के हस्तलिखित ग्रन्थो के अध्ययन एव नोट्स आदि लेने की अनुमति पाई । श्री ऐडमिनिस्ट्रेटर महोदय ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की तथा स्वीकृति-पत्र पर पुस्तकाध्यक्ष को नोट लिख कर दिया कि जिससे वे मुझको सर्व सुविधा प्रदान कर सकें । पुस्तकाध्यक्ष श्री मोतीलाल गुट्टू से मिला, उन्होने मुझे हस्तलिखित ग्रन्थो का सूची-रजिस्टर दिया । रजिस्टर के अनुसार मैंने अपने विषय सबधी पुस्तको की सूची बनाई जिसके अनुसार ८० वार्तायें, २ ख्यात, ३ वशावली, १ वचनिका तथा १ विगप्त है । ‘पेलेस’ के आफिसर इचार्ज बाहर थे अतएव ग्रन्थालय नहीं खोला जा सका ।

ता० १६ मई को प्रात ११ बजे ‘पेलेस’ पहुँचने पर पुस्तकाध्यक्ष श्री गुट्टू के साथ ‘पेलेस’ के आफिसर इचार्ज श्री चन्द्रसिंह से भेंट की तथा उनको ऐडमिनिस्ट्रेटर महोदय का अनुमति-पत्र दिया । श्री चन्द्रसिंह ने दो सिपाही तथा एक गाई को बुलाया तथा हम सब ‘पेलेस’ के भीतरी भाग में प्रविष्ट हुये । एक विशेष कक्ष में सुरक्षित रखी “पुस्तकालय-कक्ष” की कुजी श्री चन्द्रसिंह ने निकाली और उसमें पुस्तकालय कक्ष का

द्वारा जोला। कथ में लगभग २०-२२ घण्टा मारियां हैं जिनमें संस्कृत वेद पुराण उप
निषद्, तंत्र योग ज्योतिष तथा राजस्थानी के हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इन ग्रंथों के
प्रतिरिक्त श्रीमद्भागवत रामायण तथा महाभारत के बीर्वाकार विध हैं जिनमें कपात्मक
भावों का दूषिका से मुन्दर स्प-बैभव प्रकृत किया गया है।

'पेलेस' के 'पुस्तक-प्रकाश' पुस्तकालय में ता १६ १७ १८ २ २२ २३
२४ मई तक मेने कार्य किया। १५ मई एचवार, तथा २१ मई को प्रतापबन्दी के
कारण पुस्तकालय का प्रकाश-दिवस था। इस कार्य-काल में मैंने २१ बाताओं को देखा
उनके प्रारम्भिक मध्य और प्रतिम ग्रंथों को नोट कर लिया। क्याओं में केवल
'तत्त्वसिंहजी बीस्वात' ही देख पाया। अन्य क्याओं खोजने पर भी नहीं प्राप्त हो सकी जब
कि सूची-पत्र में उनका संकेत है। 'तत्त्वसिंहजी बीस्वात' अपूर्ण है।

प्रथम क्रम के प्रतिरिक्त ता १८ वा २१ मई को मैंने निम्न विद्वानों से सम्पर्क
स्थापित किया तथा विषय सम्बन्धी पत्राचार भी —

(१) श्री प नित्यनाथ स्वामी घाटसी रिटायर्ड पुस्तकालय 'पुस्तक-प्रकाश'
पुस्तकालय। इनसे ज्ञान हुआ कि पुस्तक-प्रकाश में जो गद्य सम्बन्धी रचनाएँ हैं वे प्रकाश
तथा १८वीं प्रतापकी के पत्राचार की हैं। और कुछ रचनाओं की प्रतिरिक्त नकल करवाई
गई है तथा कुछ चारम भागों से क्रम भी गई है।

(२) श्री नारायणसिंह भाटी—संपादक—'परम्परा' जोषासनी घोष संस्थान
जोषपुर। श्री भाटी ने 'परम्परा' सैमासिक पत्रिका के प्रकृत दिखलाये। यह पत्रिका
'राजस्थानी-साहित्य' के एक मुख्य विषय को लेकर प्रकाशित होती है। पत्रिका का
विशेषांक 'राजस्थानी भाटी साहित्य' प्रकाशित होने वाला है। उनके द्वारा यह
ज्ञात हुआ है कि श्री-संस्थान में दो क्याओं तथा फूटकर बाटाएँ उपलब्ध हैं। श्री भाटी
ने मेरे विषय की सराहना करते हुये कहा कि वह विषय विस्तृत दो प्रथम है। लेकिन
इस विषय पर जोष की भारी आवश्यकता है। श्री भाटी ने एक सुझाव यह भी दिया
कि पत्र-साहित्य के प्रथम क्रम में भाटी साहित्य पर विशेष और विस्तृत प्रथम क्रम भी किया
जाना चाहिए।

(३) श्री सीधाराम सलिस—राजस्थानी भाषा के अध्येतक विद्वान हैं। राजस्थानी
व्याकरण नामक अपनी पुस्तक में राजस्थानी भाषा का सरल व सुबोध व्याकरण प्रस्तुत
किया है। इस समय भी सलिस राजस्थानी सम्बन्ध-कोष तैयार कर रहे हैं। उन्होंने सम्बन्ध
कोष का कार्य मुझे दिखलाया। उनके सपरह में गद्य संबंधी पत्राचार सामग्री है। जोषपुर
में केवल एक बही उनके पास है जिसमें लगभग १ से ऊपर बाटाएँ लिपिबद्ध हैं।
इस बही में कुछ मूल्य वाचघाटों की तथा अन्य सत्रिय नरेखों की अल्पकुछलियाँ भी बनी
हुई हैं। इनके प्रतिरिक्त उनके अपने गद्य के निजी सग्रहामय व राजस्थान के प्रथम
राजस्थानी एव राज्यों के सत्रिय में 'बात—साहित्य' है। श्री सलिस ने सत्रिय में संपादित
सहयोग देने का मुझे प्रस्ताव दिया।

'पेलेस' के प्राचीन इन्चार्ज श्री चन्द्रसिंह से बात हुआ कि जोषपुर से ४ मील
दूर 'बीसाडा' नामक स्थान पर 'माई जी बेनी' का मन्दिर है। मन्दिर का एक मित्री

पुस्तकालय है। उसके संरक्षक मंदिर के पुजारी हैं जो दीवान जी कहलाते हैं। उसमें योग और तंत्र के ग्रन्थों के अतिरिक्त महाराणा प्रताप एवं राठीर वीर दुर्गादास के १६ पत्र सुरक्षित रखे हैं। परन्तु उनके देखने व अध्ययन के लिए दीवान जी से आज्ञा लेनी पड़ती है। सूत्रों से ज्ञात हुआ कि दीवान जी उस समय ‘वीलाडा’ में उस्थित नहीं थे। साथ ही चन्द्रसिंह जी से यह भी मालूम हुआ कि मडावा (शेखावाटी) के कुंभर श्री देवीसिंह के पास पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है।

इस प्रकार जोधपुर का अपना कार्य समाप्त करके मैंने ता० २५ मई को उदयपुर के लिए प्रस्थान किया।

उदयपुर

ता० १६ मई को प्रातः काल ९ बजे उदयपुर पहुँचा। उसी दिन राजस्थान साहित्य-संस्थान के कार्यवाहक मंत्री जी से मिला और उनसे मैंने अपने विषय की चर्चा की। उन्होंने दूसरे दिन आने के लिए कहा, क्योंकि इस समय कविराज श्री मोहनसिंह जी उपस्थित नहीं थे। तत्पश्चात् मैं पार्क के पुस्तकालय पहुँचा। वहाँ श्री डा० मोतीलाल मेनारिया से भेंट हुई। श्री मेनारिया ने मुझे परामर्श दिया कि विषय के नाम में परिवर्तन कर ‘डिगल गद्य-साहित्य’ के स्थान पर ‘राजस्थानी गद्य-साहित्य’ रखा जाय और साथ ही यह भी सुझाव दिया कि इस विषय के लिए राजस्थान का ही कोई विद्वान् निर्देशक हो तो अच्छा, क्योंकि यह बड़ा उल्लेखनीय और विस्तृत विषय है। मैंने उन्हें इस सुझाव के लिए धन्यवाद दिया। डिगल और राजस्थानी के अन्तर के संबंध में हमारी बातों काफ़ी विशद रही। उनका कथन यही था कि डिगल का नाम बहुत पश्चात् का है और डिगल केवल कवियों के प्रयोग की एक भाषा अथवा शैली मात्र है। तत्पश्चात् मैंने राजकीय पुस्तकालय ‘सरस्वती भवन’ में सुरक्षित ग्रन्थों के अवलोकन-अध्ययन की इच्छा व्यक्त की। श्री मेनारिया ने कहा कि इस समय ‘सरस्वती भवन’ के ग्रन्थों का अध्ययन आदि नहीं किया जा सकता, कारण की गत १ वर्ष ६ माह से मुनि कान्ति सागर पर भवन से कुछ सामग्री गवन किये जाने के परिणाम स्वरूप कोर्ट-केस चल रहा है। इस कारण वहाँ के ग्रन्थ देखना सुलभ नहीं है। यह जानकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। खैर मैं उनसे सहयोग का आश्वासन पाकर लौट आया।

ता० २७ मई को राजस्थान शोध संस्थान के पीठस्थविर तथा राजस्थान साहित्य अकादमी के अध्यक्ष श्री जनार्दनराय नागर से उनके आवासस्थान पर भेंट की। उन्होंने शोध-संस्थान के मंत्री को इस आशय का पत्र लिख कर दिया कि जिससे मुझे हर प्रकार की सुविधा व सहयोग मिल सके। वहाँ से मैं शोध-संस्था गया तथा मोहनसिंह कविराज से मिला। उन्होंने एक प्रति मुझे दिखलाई जिसे उदयपुर नरेश ने उन्हें भेंट स्वरूप दी थी। प्रति १८वीं शताब्दी की रचित है तथा उसमें फुटकर ८० वाक्यांश लिपिबद्ध हैं। इसके अतिरिक्त उनके पास से अधिक सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी। मैंने नाथद्वारा और काँकरोली की ओर जाने का निश्चय किया। एक परिचित सज्जन से ज्ञात हुआ था कि इन स्थानों पर भी कुछ सामग्री प्राप्त हो सकती है। अतएव मैं ता० २८ मई को नाथद्वारे और

नाकरानी गया परन्तु निराश ही लौटना पड़ा। वहाँ पर मेरे कार्य की कोई विधिप सामग्री नहीं थी। इन स्थानों पर अधिकारतया धार्मिक साहित्य विद्यपकर इन्ध भाषा में विद्यमान है—प्रनुवाह के रूप में कुछ रचनायें हैं जो गद्य एवं पद्य दोनों में ही हैं। मह प्रनुवाहित सामग्री लगभग ११वीं शताब्दी की है। प्रत्यक्ष ता १ मई की मैं उदयपुर लौट आया तथा उदयपुर से बापस प्रजमेर २ जून को पहुँच गया।

जयपुर

१ जून १५ को मैं जयपुर पहुँचा। ११ जून को जयपुर में 'राजस्वान के पुरातत्व मंदिर में' कार्य किया। वहाँ पर प्रच्छी सामग्री है। अधिकारत सामग्री बाकी सम्बन्धी है तथा कुछ बंधावसिपाँ विषय व बंधनकार्यें भी हैं जिनकी संख्या ५४६ है। इनका रचनाकाल १७ वीं शताब्दी से १९ वीं शताब्दी तक है। इनके प्रतिरिक्त विविध विषयों के राजस्वानो प्रबंध भी उपलब्ध है। 'पुरातत्व-मंदिर' से राजस्वान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की लोच भाग १ २ ३ ४ में से मैंने प्रपत्ता प्रसन्न सूची-पत्र बनाया जिनमें लगभग ३२ ग्रंथ मेरे विषय सम्बन्धित हैं जिनका प्राप्ति-स्थान भी प्रकृत है। इस कार्य में मुझे डा. रंजराज उपाध्याय डिप्टी डायरेक्टर तथा अन्य कार्यकर्ताओं का सौहार्द व सहयोग मिला। 'पुरातत्व-मंदिर' से प्रकाशित 'बाकीबास के स्वात' मैंने स्विकृत की। 'मूह नौतैनीनटी की स्वात' का संपादन कार्य बस रहा है। यही पर एक मिन से ज्ञात हुआ कि पं. रामकृष्ण जी घासोपा ने 'नैनीसी की स्वात' का एक भाग संपादित किया था जो उनके पुत्र के द्वारा प्राप्त हो सकता है। मैंने उनका नाम पठा प्रकृत कर सिवा प्रीर प्रजमेर से उनको पत्र दिया है जिनमें 'नैनीसी की स्वात' मूल मिला चले। वैसे नैनीसी की स्वात का हिन्दी प्रनुवाह (दो भाषा में) काशी नामरी प्रचारिणी सभा से भी प्रकाशित हो चुका है।

११ जून का मैंने मंडोबा कुँवर साहब से सम्पर्क स्थापित किया। क्योंकि वे प्रायः जयपुर में ही हैं। मंडोबा के कुँवर सा. भी देवीसिंह जी के यहाँ ५ भाषी में भाषा में निषिद्ध है तथा कुछ प्रसाजनिमा भी हैं। उन्होंने मुझे आशयत दिया है कि कुछ समय बाद यह सामग्री मंडोबा से जयपुर प्रेषित की जायगी।

जयपुर के नरेश का व्यक्तिगत पुस्तकालय 'पाषी-घाना' के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर भी प्राप्ति सामग्री है। एसा जानकर घण्टी से विदित हुआ। परन्तु जयपुर नरेश उक्त आशोगत का दृश्य की प्रनुमति नहीं देत एसा मामूळ हुआ। कुछ व्यक्ति से इस सम्बन्ध में मैंने चर्चा भी की परन्तु जड़ुन विवधता ही स्विकृत की। परन्तु मैं समझता हूँ कि जयपुर नरेश से सम्पर्क स्थापित करने पर संभव है इस समस्या का समाधान निकाला जा सके। इनके प्रतिरिक्त जयपुर में राजस्वान के अंत प्रबंध भंडारों का सूचीपत्र रोगने के लिए मैंने जेठ काशीपर जी बंधरा मैंनेबर महावीर प्रसिदाय कमेटी प्रबंधरमास जी प्रायशीर्ष प्राप्ति मंडोबा से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया परन्तु सम्पर्क बना नहीं गया। मैं अब भी उनसे आशयत पर माग प्रनुपस्थित व।

१२ जून का भी स्विकृत नामक या पुरासिद्ध म. भंड की तथा पुरोहित हरनाथपत्र या इ. नि. ग. का. का. के म. १५ में जानकारी प्राप्त की। उन्होंने मुझे सहयोग का आश्वासन दिया। आशयत मैं प्रजमेर लौट आया।

बीकानेर

१५ जून ५८ को अजमेर से बीकानेर के लिए प्रस्थान किया। १६ जून को प्रातः ७ बजे बीकानेर पहुँचा। १६ जून को ११ बजे श्री अग्ररचन्द जी नाहटा से अभय जैनग्रन्थालय में भेंट की तथा उनसे विषय के सबध में चर्चा हुई। श्री नाहटा ने भी यही सुझाव दिया कि ‘डिगल गद्य साहित्य’ के वजाय ‘राजस्थानी गद्य साहित्य’ रखा जाय। तथा विषय के लिए राजस्थानी भाषा-साहित्य के विद्वान को ही निर्देशक बनाया जाय। श्री नाहटा ने श्री नरोत्तम दास स्वामी से भी सम्पर्क स्थापित करने के लिए कहा है।

१६ जून से ३० जून तक मैं बीकानेर रहा। बीकानेर में लालगढ स्थित ‘अनूप सस्कृत लाइब्रेरी’ में ता० १८, १९, २०, २४, २५, २६, व २७ तक अध्ययन कार्य किया। ये लालगढ नगर से ४ मील दूर स्थित है जहाँ पर मैं सवेरे ११ बजे पहुँच जाता तथा सायंकाल ४ बजे तक ग्रन्थावलोकन करके लौटता। इन दिनों में मैंने मुख्यतया बीकानेर के ‘रोठोडो की ख्यात’ (दो भागो) का अध्ययन किया। वह ख्यात दयालदास सिढायल द्वारा रचित है। इसमें ब्रह्मा की उत्पत्ति की कथा से लेकर राठोड वंश की उत्पत्ति, वहाँ के राजवंशो का विवरण तथा प्रमुख घटनाओं का विशद चित्रण किया गया है। इसका रचनाकाल १८ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इसके अतिरिक्त राठोडो की वंशावली, कुछ वार्ताओं तथा राजस्थानी अनुवाद आदि को देखा। ‘अनूप सस्कृत लाइब्रेरी’ के कार्यवाहक मन्त्री श्री वावूराम जी से ज्ञात हुआ कि वहाँ के ग्रन्थ ‘सुरक्षा-अनुबन्ध’ के द्वारा दिये जा सकते हैं। सुरक्षा-अनुबन्ध की मैंने उनसे पूर्ण जानकारी प्राप्त की, जिसके अनुसार मैंने एक स्टाम्प-पत्र पर पाच सौ रुपये का ‘सुरक्षा-अनुबन्ध-पत्र’ भरा तथा हस्ताक्षर के लिए प्रिंसिपल गवर्नमेंट कालेज, अजमेर को वह फार्म भेज दिया। यह कार्य मैंने ता० २१ जून सम्पन्न किया परन्तु २४ तारीख तक जब प्रिंसिपल महोदय के हस्ताक्षर होकर ‘अनुबन्ध-पत्र’ मूझे नहीं मिला तो मैंने ता० २४ व २५ को अजमेर टेलीफोन पर ‘अनुबन्ध-पत्र’ को शीघ्र भेजने की प्रार्थना की। ता० २७ को वह ‘अनुबन्ध-पत्र’ प्रिंसिपल महोदय के हस्ताक्षर सहित मुझे प्राप्त हुआ। गवाह के स्थान पर श्री अग्ररचन्द जी नाहटा के हस्ताक्षर कराकर वह ‘अनुबन्ध-पत्र’ मैंने श्री वावूराम शर्मा को दिया। उन्होंने वहाँ के आफिसर इंचार्ज की अनुमति लेकर ग्रन्थ देना स्वीकार कर लिया। सर्व प्रथम ‘वार्ता-साहित्य’ पर अध्ययन प्रारम्भ करने का विचार करके मैंने वात्त सग्रह की प्रति निकलवाली। राजस्थान का वार्ता-साहित्य भाषा वैज्ञानिक एवं साहित्यिक दृष्टियों से महत्त्व पूर्ण माना जाता है।

ता० १७, २१, २२, २३, के दिनों में श्री अग्ररचन्द जी नाहटा के सग्रहलय में ग्रन्थावलोकन करता रहा। इन्हीं दिनों समय निकाल कर मैंने श्री नरोत्तराम दास स्वामी से भी भेंट की। श्री स्वामी जी ने भी विषय और निर्देशक के सम्बन्ध में वही बात कही जो श्री नाहटा जी ने कही थी। साथ ही स्वामी जी ने निर्देशक के लिए श्री अग्ररचन्द नाहटा का नाम प्रस्तावित किया तथा यह कहा कि विद्यापीठ के डाइरेक्टर महोदय को आप अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दें कि वे श्री नाहटा का नाम निर्देशक के लिए स्वीकार कर लें। साथ ही श्री नाहटा से भी इस विषय पर चर्चा कर ली जाय तो उचित रहेगा।

श्री स्वामी जी के निर्देशक श्री शिवस्वरूप शर्मा ने राजस्थानी गद्य के उद्भव-विकास पर शोध प्रबन्ध लिखा है। विषय प्रबन्धोक्त करने से प्रतीत हुआ कि यह शोध प्रबन्ध विवरणात्मक अधिक है। शालोचनात्मक दृष्टि से इसमें कम ही विचार किया गया है। इस प्रबन्ध में प्रतिकालतया जैन विद्वानों की रचनाओं का उल्लेख अधिक है। स्थातो तथा वार्ताओं पर विषय रूप से विचार नहीं किया गया है। श्री प्रमुख स्थातो का परिचय इसमें प्रबन्ध है। मेरे विषय की जो रूपरेखा श्रीर सीमार्गे है उससे इस प्रबन्ध का विशेष सान्निध्य नहीं है। यह प्रबन्ध तो केवल गद्य के इतिहास का विवरणात्मक अध्ययन भर प्रस्तुत करता है।

श्री माहटा जी के 'धर्मय जैन ग्रन्थासय' में स्थातो धारि नहीं है। कुछ वार्तायें फूटकर नुटको में हैं। प्रतिकाल सामग्री जैन विद्वानों की है जिनमें कई एक जैन गद्य लेखक भी हैं। श्री अमरचन्द माहटा ने यह सुझाव दिया कि गुजरात के विद्वानों से श्री सम्पर्क स्थापित करके इधर की सामग्री के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। मुख्यतया ये विद्वान हैं—डा मोदी साल साडेसरा बड़ीबा विस्वविद्यालय बड़ीबा श्री केशवसाल शास्त्री गुजरात विद्यासभा मह बा हरि बस्त्रभ मयाजी भारतीय विद्याभवन चौपाटी बम्बई श्री मञ्जुलाल मञ्जुमार वैतन्य बाम प्रतापनब बड़ीबा। साथ ही श्री माहटा जी ने इन पुस्तकों के अध्ययन पर भी धोर दिया—गुजराती साहित्य-मध्यकालीन साहित्य-प्रवाह, वर्णक समुच्चय पश्चिमतक बालबोध उपदेशमाला जैन मुर्जर संघ, (भाग १ स ४) जैन साहित्य का इतिहास तथा गुजराती गद्य सभन धारि। श्री माहटा जी ने टीसीटीटी के शोध कार्य का भी अध्ययन करने को कहा विशेषकर उन केंद्रों का जो राजस्थान के ऐतिहासिक हस्तलिखित ग्रन्थों के परिचय विषय पर प्रकाशित हुए हैं। श्री माहटा जी ने इन विद्वानों से भी सम्पर्क बनाने को कहा—श्री उदय राज उज्ज्वल ईश्वरदान जी बापूराम जी श्यास सत्यदेव जी घाड,। रविचन्द्र देरासरी विजय करम जी घाडा भासनमचमोदी तथा राम-शिवनाथसिंह धारि जिनके द्वारा पद्य सभनी सामग्री का परिचय मिल सकता है जो राजकीय पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं है तथा जो केवल गद्य सम्पत्ति रूप है। मैंने इन सब उज्ज्वलों का पता नोट कर लिया है तथा अब उनसे पद्य व्यवहार प्रारम्भ कर रहा हूँ। आवश्यकता होने पर उन स्थानों पर जाकर उनमें व्यक्तिगत सम्पर्क भी स्थापित करने का प्रयत्न करूँगा।

श्री माहटा जी से हुई चर्चाओं के फल-स्वरूप अपने विषय को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

१. माया विकास की दृष्टि से राजस्थानी गद्य का ऐतिहासिक स्वरूप विकास
२. गद्य की ऐतिहासिकता। इसके अन्तर्गत स्थात बंदावनी विमत पीढ़ियाँ बचविचारों पदुटे परवाने धारि ऐतिहासिक सामग्री का विवेचनात्मक अध्ययन होना।
३. साहित्यिक गद्य-वार्तायें।
४. टीकायें टप्पे व बालाचबोध।
५. गद्य का तुलनात्मक अध्ययन (राजस्थान की विभिन्न-विभिन्न बोलियों के आधार पर तथा गुजराती मालकी धारि गद्य की दृष्टि-पक्ष में रखते हुए।)

श्री नरोतराम दास स्वामी के कथन के आधार पर निर्देशक के लिए मैंने श्री अग्ररचन्द जी नाहटा से चर्चा की। चर्चा का निष्कर्ष यह निकला कि यदि विद्यापीठ स्वीकार कर लेता है तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी। श्री नाहटा राजस्थानी भाषा व साहित्य के विशेषज्ञ हैं और उनके सहयोग से इस विषय का कार्य भी सुगमता से सम्पन्न हो सकता है।

सीकर

ता० २८ जून को प्रा० ७-३० पर मैं मोरार पहुँचा। सीकर में २८, २९, व ३० तारीख तक रहा। सीकर में प० शिवनारायण जी आचार्य भू० पू० मन्त्री जागीरदार कमेटी का पूर्ण सहयोग मुझे प्राप्त हुआ। सीकर के गढ में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में लगभग १०० पृष्ठों की एक हस्तलिखित प्रति देखने को मिली जिसमें सेखावतो की वशावली तथा पीढियाँ हैं जो कि पुरोहितों के द्वारा लिखी गई हैं। तीन चार लिपिकारों की लेखनी से यह प्रति सुशोभित है, जिसमें श्री माधवसिंह जी तक का वर्णन है। सीकर के पुरोहितों की परम्परा से यह लिपिवद्ध होती आई है। ऐसा वहाँ पर सज्जनों से चर्चा करने पर विदित हुआ। इसके अतिरिक्त रजिस्टर रूप में सेखावतो की वशावली की एक अन्य प्रति भी देखने को मिली जिसमें कुशवाहा वंश का उल्लेख तथा सीकर बसाने आदि के वर्णन से प्रारम्भ होकर वहाँ के राजाओं के कार्य काल का भी वर्णन है। इसका लिपिकाल स० १९४५ है। इसमें मुख्य रूप से खिजड़ी राज्य का हाल विस्तृत रूप से दिया गया है। सीकर के इतिहास को वहाँ के पुस्तकालय में जाकर देखा। पुस्तकालय में ‘वीर-विनोद’ के २० भाग भी रखे हुए हैं जिनमें गद्य के अनेक रूपों का परिचय मिलता है। साथ ही इसमें प्राचीन राजा महाराजाओं के पत्रादि की नकलें भी हैं। सीकर के जैन दिगम्बर मन्दिर का ग्रन्थालय भी देखा परन्तु कुछ सामग्री नहीं मिल सकी। हा १८ वीं शताब्दी में रचित जैन विद्वानों का धार्मिक गद्य वहाँ पर अवश्य उपलब्ध है।

इस प्रकार राजस्थान के इन विभिन्न भू-भागों की ओर भ्रमण करने पर प्रतीत हुआ कि गद्य सबधी सामग्री पर्याप्त भाषा में उपलब्ध है। राजकीय पुस्तकालयों के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी सम्पर्क तथा परिचय प्राप्त करने पर अप्रकाशित ग्रन्थों का ज्ञान किया जा सकता है जिसकी जानकारी अभी तक साहित्य-संसार को प्राप्त नहीं है।

मेरे विषय की वह अध्ययन सबधी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सब ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में हैं तथा राजस्थान के सम्पूर्ण भागों में वह साहित्य यत्र-तत्र बिखरा हुआ पड़ा है। इसके लिए अधिक से अधिक समय की आवश्यकता है। फिर भी मेरा प्रयत्न यही रहेगा कि मैं अधिक समय निकाल कर इस कार्य में जुट सकूँ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं० पक्ति सं०

अशुद्ध

शुद्ध

अनुसंधान के सामान्य तत्त्व

२५	१८	अनुसधितनु	अनुसधित्सु
७३	११	कैटेला-गस कैटैलोग	कैटॉलॉगस कैटलगोरम'
७४	४	आर्कलीजो	आर्काइव्ज

पुस्तकाध्ययन तथा सामग्री निबधन

८३	४	thorough	पूर्ण
८३	१०	accuracy	शुद्धता
८३	१५	clean slate	नए सिरे
८३	२०	out of date	बहुत पुराने
८५	११	Bibliography cards	पुस्तक सूची कार्ड्स
८६	४	cf (data)	cf, confer. (date)
८६	५	cp	cp , compare
		Sic	Sic wrongly
८६	६	qv	q v quodvide "which see"
८६	७	lc, loc cit	l c , loc cit
८६	१०	opcit (=the work cited)	op cit , (=in the work cited) opere citato
८६	११	Ibid	Ibid, . source
८६	१२	Supra	Supra, see above
८६	१३	Infra	Infra, see below
८६	१८	Encyclopedia	विश्वकोष
८६	२०	Bibliography cards	(Bibliography cards)
८७	१२	प्रकाशके	प्रकाशक
८७	१५	पश्चात्	पश्चात्
८९	२	file	फाइल
८९	४	Ring File	(Ring File)
८९	४	file	फाइल
८९	७	Index cards	क्रम सूचक कार्ड

पृष्ठ सं	पंक्ति सं	पद्य	पद्य
८१	७	कटमे	कटमे
८१	११	Notes	टिप्पणी
१	४	Paraphrase Type	भाषानुवादात्मक
१	६	Summary Notes	(Summary Notes)
१	७	उद्धरणनोट्स Quotation Notes	उद्धरणनोट्स (Quotation Notes)
१	१	Suggestive Notes	(Suggestive Notes)
१	१७	loose sheets	पन्नों
१	१८	Notes-Sheets या notes-cards	नोट-शीट या नोट-कार्ड
१	११	Size	आकार के
११	४	Double checking	Double checking
११	४	Bibliography cards	पुस्तक सूची कार्डों
११	२	code	चिह्न
११	१	loose leaves	थलग थलग पन्नों
११	११	loose	थले
११	११	पन्ना	पन्ना
११	११	punched file	छेद वाली फाइल
११	१२	clip file	क्लिप वाली फाइल
११	१४	clip	(clip)
११	१६	punched file cover	छेद किये हुए फाइल-कवर
११	१८	indexing	क्रम सूचक कार्य
१२	१	(१-२-१)	(१ २ १)
१२	६	१	८
१२	८	सूचक	सूचक
१२	८	आएमा ।	आएमा ।
१२	१	Filing	काइतिब
१२	११	संकेतो—डाल रीजिस् ।	संकेतो—(घासी स्वात) डाल रीजिस् ।
१२	११	ही	ही
१२	११	General या muscellanous	सामान्य या विविध
१२	१२	Filing Indexes	फाइलों के क्रम-सूचक
१२	१७	file	फाइल
१२	१७	index	क्रमसूचको

पृष्ठ स०	पक्ति स	अशुद्ध	शुद्ध
६२	१७	foolscap	फुल स्केप
६२	१६	Bibliography cards	पुस्तक सूची कार्डों
६२	२२	की Sheet	के पृष्ठ
६२	२३	Section	वर्ग
६२	२४	Notes वनोंगे ।	टिप्पणी वनोंगी
६२	२४	Bibliography card	पुस्तक सूची कार्ड
६२	२६	पण्डो	पृष्ठो

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के प्रकाशन

“भारतीय साहित्य ।” त्रैमासिक मुखपत्र । वर्षभर में ८०० पृष्ठों की गवेषणापूर्ण सामग्री । वार्षिक मूल्य—१२, ६० । एक प्रति—५, ६० । वर्ष भर के सजिल्द अंक १८, ६०, अजिल्द—१६, ६० । जनवरी १९५६ से प्रारम्भ ।

“ग्रथ-वीथिका ।” अलम्य एव अप्रकाशित हस्तलिखित तथा अप्राप्य मुद्रित ग्रथों का संग्रह । १९५६ के अंक में नौ ग्रथ हैं और १९५७ के अंक में ग्यारह ग्रथ हैं । मूल्य—१०, ६० ।

“हिन्दी धातु संग्रह ।” प्रसिद्ध भाषातत्त्ववेत्ता हार्नले के निबन्ध का हिन्दी रूपान्तर । मूल्य—२, ६० ।

“जाहरपीर गुरुगुगा ।” स०—डॉ० सत्येन्द्र । जाहरपीर का लोक गीत तथा उसकी गवेषणापूर्ण विवेचना । मूल्य—३ ५०, ६० ।

“भारतीय ऐतिहासिक उपन्यास ।” प्रमुख भारतीय भाषाओं में ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास का अध्ययन । मूल्य—२ ५०, ६० ।

“छन्दोहृदयप्रकाश ।” मुरलीधर कविभूषण कृत । स०—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद । मूल्य—५, ६० ।

“मानस में उक्ति सौष्ठव” । रामचरित मानस में उक्तियों के चमत्कार पर सरस भाषण । डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र । मूल्य—२५, ६० पै० ।

“अली आदिलशाह का काव्य-संग्रह ।” स०—श्री श्रीराम शर्मा व श्री मुबारिजुद्दीन रफत । मूल्य—४ ५०, ६० ।

“शोला का काव्य-संग्रह ।” (मु० वनवारीलाल शोला) स०—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ।

प्रेस में

- | | | | |
|----|---------------------------|----------------------------------------|-----------------------------------------------------------|
| १० | “लोर कहा ।” | (मुल्ला दाऊद) | स०—डॉ० माता प्रसाद गुप्त । |
| ११ | “पद्मावत ।” | (अलाउल—) | स०—डॉ० सत्येन्द्र नाथ घोषाल । |
| १२ | “पिगल-संग्रह ।” | मध्यकालीन पिगल-सवधी ग्रथों का संग्रह । | स०—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद । |
| १३ | “नजीर का काव्य-संग्रह ।” | | स०—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद । |
| १४ | “तुलनात्मक भाषाविज्ञान ।” | (भाग १) | ले० एफ० एफ० फर्तुगानोव ।
अनु० डॉ० केसरी नारायण शुक्ल । |
| १५ | “बंगाल की ब्रज-बोली ।” | (पद शतक) | स०—डॉ० सत्येन्द्र । |
| १६ | “ब्रज-लोकवार्ता-कोश ।” | | स०—डॉ० सत्येन्द्र । |
| १७ | “शशिमाला-कथा ।” | (दयाल) | म०—श्री उदय शङ्कर शास्त्री । |

प्रकाशन

“अनुसंधान के मूल-तत्त्व ।” हिन्दी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में संलग्न शोध-छात्रों के लिए अनुसंधान विषयक उपयोगिता पूर्ण सामग्री । अनुसंधान के सिद्धान्त, पुस्तकालयों का उपयोग, शोध प्रवृत्त की तैयारी हस्तलिखित ग्रन्थों से आवश्यक सामग्री-चयन करने की पद्धति आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रामाणिक लेख तथा हस्तलिखित ग्रन्थों में प्रयुक्त प्रकारों, मात्राओं, अक्षरों के बसक-फलक सहित ।

मूल्य—२) ६० मात्र ।



× × × × विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित अजी कानिकर्याह के काव्य-संग्रह पर प्रसिद्ध मातृसंस्मरण डॉ सुनीति कुमार पाटुम्पा ने यह सम्मति दी है—

× × × × आप श्रीम कापडे सखीबेटी दलिकली बोली में प्राचीन हिन्दी-साहित्य की अल्प-मिति को मायरी किति में काकर कापुनिक—मायरीन भाषाओं के अल्प-संग्रह पर अल्प-संग्रह के अल्प-कार्य की कर रहे हैं । अजी कानिकर्याह के अल्प-संग्रह का अल्प-संग्रह अल्प ही अल्प ही है । अल्प-संग्रह के अल्प-संग्रह—अल्प-संग्रह का अल्प-संग्रह अल्प ही अल्प ही है ।

× × × ×

प्राप्ति स्थान—

क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा